राष्ट्रीय संगोष्ठी

'भारत में चुनाव सुधार: संवाद और विकल्प'

21 अप्रैल, 2012

स्पीकर हॉल, कॉन्स्टीट्यूशन क्लब

नई दिल्ली

उद्घाटन सत्र

रश्मिनी कोपरकर

सेमिनार में आए सभी प्रतिनिधियों को सुप्रभात, पीपल फॉर नेशन (पीएफएन) द्वारा चुनाव सुधार पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में आप सभी का स्वागत करता है. हम एक संगठन के रूप में चुनाव सुधारों के क्षेत्र में काम कर रहे हैं. मैं पीएफएन के निदेशक श्री अजीत कुमार को संगोष्ठी और संगठन के बारे में बात रखने के लिए आमंत्रित करती हूँ.

अजीत कुमार

मैं कांस्टीट्यूशन क्लब के स्पीकर हॉल में आए आप सभी अतिथियों का स्वागत करता हूँ. हम में से कुछ को चुनाव सुधार के महत्व का एहसास हुआ और हमने उस पर काम करने का फैसला किया. हमने तब इस मुद्दे पर आगे बढने के तरीके और रणनीति पर विमर्श किया. इस प्रयोजन के लिए हम ने पहले से ही इस क्षेत्र में काम कर रहे विभिन्न क्षेत्रों से लोगों के साथ विचार - विमर्श किया, जैसे कि शिक्षाविद, मीडिया के लोग और अन्य सामाजिक क्षेत्रों में काम कर रहे लोग. यह निर्णय लिया गया कि हम एक संगठन बनाएं जो चुनाव सुधारों की इस मिशन को आगे ले जाने के एक मंच के रूप में कार्य करे. इस प्रक्रिया में पीएफएन ने इस क्षेत्र में काम कर रहे विख्यात लोगों द्वारा चर्चा का आयोजन करना शुरू किया. इस श्रंखला में हमने सबसे पहले श्री सुभाष कश्यप जी को बुलाया जिन्होंने चुनाव सुधार के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किए और इस वार्ता में मुख्य रूप से डीयू, जेएनयू, और विधि संकाय के शोध छात्रों ने भाग लिया. इसके बाद जेएनयू में 'राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र' की जरूरत के मुद्दे पर प्रोफेसर जगदीप चोकर के साथ एक

चर्चा सत्र आयोजित किया गया था. इसके अलावा इस श्रृंखला में नोएडा में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल और विभिन्न समाचार पत्रों में चुनाव कवर करने वाले पत्रकारों के साथ एक बातचीत आयोजित की गयी. वर्तमान में हम हमारे देश में चुनाव सुधार के क्षेत्र में अनुसंधान और शोध की प्रक्रिया में लगे हुए हैं.

हम हमारे पड़ोसियों की तुलना में भाग्यशाली रहे हैं, जो अभी भी उचित लोकतांत्रिक व्यवस्था से वंचित हैं. हमारे पहले की पीढ़ी ने हमारे लिए लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित एक राजनीतिक प्रणाली स्थापित करने के लिए बहुत संघर्ष किया है. इस लोकतांत्रिक व्यवस्था के एक मौलिक हिस्से के रुप में नियमित अंतराल के बाद होने वाले चुनावों के माध्यम से हमें वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को स्वीकार करने या अस्वीकार करने का अधिकार मिल गया है. हालांकि, इसे मजबूत बनाने के लिए और इसकी सभी कमियों को दूर करने के लिए चुनावी प्रणाली में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव लाने की जरूरत है. आज हमारे सम्मानीय आज मेहमान संगोष्ठी में इस बात पर चर्चा करेंगे कि हमारी चुनावी प्रक्रिया को और अधिक स्वस्थ और जीवंत बनाने के लिए इसमें क्या जोड़ा जा सकता है क्या हटाया जाया जा सकता है. इस सम्मेलन के बाद भी पीएफएन इस दिशा में हर संभव प्रयास करता रहेगा.

हमारे इस उद्घाटन सत्र के बाद दो कार्य-सत्र होंगे. उद्घाटन सत्र में निर्वाचन आयुक्त श्री एच एस ब्रह्मा मुख्य अतिथि हैं. इसके अतिरिक्त झारखंड, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति वीके गुप्ता, हमारे मुख्य वक्ता हैं. इस सत्र की अध्यक्षता जानेमाने संविधान विशेषज्ञ श्री सुभाष कश्यप करेंगे.

आज दिन भर इस क्षेत्र से जुड़े विख्यात लोगों के साथ चुनावी सुधार के मुद्दे पर चर्चा और विचार-विमर्श किया जाएगा. यह चुनाव सुधारों के व्यापक विषय से पर्दा उठाने का प्रयास है. यह सिर्फ एक शुरुआत है और यह चुनाव सुधारों की दिशा में एक कदम होगा.

रश्मिनी कोपरकर

मैं अब मंच पर श्री एच एस ब्रह्मा, न्यायमूर्ति वीके गुप्ता और श्री सुभाष कश्यप का स्वागत करती हूँ. मैं श्री एच एस ब्रह्मा का स्वागत करने के लिए श्री आशीष जी को आमंत्रित करती हूँ. मैं न्यायमूर्ति वीके गुप्ता का स्वागत करने के लिए श्री प्रवीण जी को आमंत्रित करती हूँ. मैं अब श्री सुभाष कश्यप जी का स्वागत करने लिए श्री जवाहर लाल कौल जी को आमंत्रित करती हूँ. मैं अब श्री सुभाष कश्यप जी से इस सत्र की अध्यक्षता करने और इस संगोष्ठी की कार्यवाही को आगे बढाने लिए अनुरोध करती हूँ.

सुभाष कश्यप

प्रिय सम्माननीय मित्रों, सब से पहले मैं श्री अजीत कुमार का स्वागत नोट प्रेषित करता हूँ और दिल से श्री ब्रह्मा, जस्टिस गुप्ता और सभी उपस्थित सम्माननीय लोगों का स्वागत करता हूँ. यह एक सम्मान की बात है कि आज हमारे बीच चुनाव आयुक्त श्री एच एस ब्रह्मा उपस्थितहैं. सब से पहले मैं उनसे अपने भाषण के साथ इस संगोष्ठी का उद्घाटन करने के लिए अनुरोध करता हूँ.

एच एस ब्रह्मा

धन्यवाद. हमारे बड़े भाई श्री कश्यप, आज के कार्यक्रम में उपस्थित हमारे प्रतिष्ठित माननीय न्यायाधीश श्री गुप्ता, श्री चोकर, उत्तर प्रदेश से श्री सक्सेना, विशिष्ट अतिथियों, प्रोफेसरों और विभिन्न मीडिया संगठनों से आए विभिन्न मीडियाकर्मी, मेरे प्रिय छात्रों, मित्रों और देवियों और सज्जनों, आप सभी को सुप्रभात.

सबसे पहले मैं कुछ कबूल करना और कहना चाहता हूँ कि वर्ष 2012 में यह पहली संगोष्ठी है जिसमें मैं भाग ले रहा हूँ और यह हमारे देश में चुनाव सुधार जैसे एक बहुत महत्वपूर्ण विषय पर भी है. हम इसके बारे में बहुत चिंतित भी है और इसमें हमारी रुचि भी है. मुझे नहीं लगता कि हमारे देश में चर्चा के लिए कोई अन्य विषय

इससे बेहतर है. इस वजह से मुझे सब से पहले है इस मुद्दे पर चर्चा के आयोजकों और सभी प्रतिभागियों को बधाई देनी चाहिए जो आज सुबह यहां मौजूद हैं. मैं इस समारोह में मुझे आमंत्रित किए जाने के लिए आयोजकों का बहुत आभारी हूँ और मैं आप सभी को दो टूक बताना चाहता हूँ कि मैं यहाँ आप सभी को कोई व्याख्यान देने या सुझाव देने नही आया हूँ लेकिन किसी भी चीज़ से अधिक मैं आप सभी से सीखने आया हूँ, आप से वह सब सुनने के लिए आया हूँ जो हमारे देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और भारत के निर्वाचन आयोग के लिए महत्वपूर्ण है. मैं चुनाव आयोग में केवल दो साल से हूँ और यहाँ कश्यप साहब, श्री सक्सेना और श्री चोकर जैसे प्रख्यात लोग देख रहा हूँ. इस सदन में कई प्रतिष्ठित लोग मौजूद हैं और आप सभी को सुनने और हमारे देश के लाभ के लिए कुछ सीखने से मुझे निश्चित रूप से खुशी मिलेगी.

कुछ मुद्दे हैं जिन्हें मैंने सोचा कि मैं आप सब के साथ साझा करूँ. यह वह मुद्दे हैं जो एक लोस सेवक के रूप में मैंने विभिन्न क्षमताओं में 37 साल के लंबे करियर में महसूस किए. मुझे लगता है कि इन मुद्दो को, जिनका आज और भविष्य में हमसे वास्ता रहेगा, इसी पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए. एक बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा जो हम सभी के लिए प्रासंगिक है, यह है कि आज हम हमारी राष्ट्रीयता के एक बहुत ही नाजुक दौर से गुजर रहे हैं. आज बेरोजगारी, गरीबी, सामाजिक समस्याएं, आर्थिक समस्याएं, और शासन और वितरण प्रणाली जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे हमारी मुख्य समस्याएं हैं. मुझे लगता है कि आप सब मेरे साथ सहमत होंगे कि आज देश के कुछ भागों में राज्य की वितरण प्रणाली में निश्चित रूप से सुधार की आवश्यकता है. शिक्षा, भोजन, रोजगार, स्वास्थ्य, बुनियादी सुविधाओं और विभिन्न अन्य मामलों में वितरण प्रणाली. मेरी राय में इस क्षेत्र में सुधार की बहुत कुछ गुंजाइश है. ऐसा नहीं कि है हमारे पास पैसे की कमी है, वास्तव में यह काफी है. हमें योजनाओं को लागू

करने की प्रक्रिया में सुधार की जरूरत है. वितरण प्रणाली और शासन की गुणवत्ता चिंता का विषय है. 37 साल के प्रशासनिक अनुभव वाले व्यक्ति के रूप में मैं यहाँ आप सभी को बहुत साफ कह देना चाहता हूँ कि खराब वितरण और खराब शासन की अस्थिरता, विद्रोह की समस्या पैदा करते हैं. मुझे आंध्र प्रदेश सरकार की पूरी जानकारी है. मैंने वहाँ लगभग 30 वर्षों के लिए काम किया है और मैं उत्तर-पूर्व में असम से संबंध रखता हूँ. यदि आप मिजोरम, नगालैंड, मणिपुर और असम में उत्तर पूर्व में उग्रवाद को देखो, यह सीधे खराब वितरण प्रणाली के साथ जुड़ा हुआ है. यह राष्ट्रीय कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में कमी के कारण है और यही बात 30-40 साल पहले नक्सली आंदोलन में हुई. तो गरीबी और खराब शासन और वितरण प्रणाली और अस्थिरता के बीच एक स्पष्ट संबंध है.

आज हम अपनी राजनीतिक-संस्कृति, अस्थिरता और वितरण प्रणाली की प्रकृति के कारण कई अन्य समस्याओं का सामना कर रही है. मुझे आप सब को अवश्य सूचित करना चाहिए कि हम दुनिया में सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश हैं और हम दुनिया में सबसे कम उम्र के लोकतंत्र भी हैं. हम बमुश्किल छह दशक पहले गणतंत्र बने. मैं हमारे गणतंत्र की तुलना में केवल 4 महीने छोटा हूँ. हम 26 जनवरी 1950 को गणतंत्र बने और मैं 19 मई, 1950 को पैदा हुआ था. तो भारत के गणतंत्र का जीवन एच एस ब्रह्मा के जीवन के बराबर है. हम बहुत युवा हैं क्योंकि मैं अपने आप को बहुत बूढा नही मानता. तो निश्चित रूप से हम बहुत युवा हैं. इन सभी वर्षों में हमने विकास का उच्च स्तर प्राप्त किया है और आज हम दुनिया में एक गौरवपूर्ण राष्ट्र हैं. हालांकि, और सुधार किए जाने की जरूरत है. सुधार के एक उचित तरीके की आवश्यकता है. आज सरकार से अलग नागरिक समाज संगठन (सिविल सोसाइटी ऑर्गेनाइजेशन) एक बड़े पैमाने पर आगे आ रहे हैं और परिवर्तन के लिए सरकार पर दबाव डाल रहे हैं.

हमारी सरकार के कामकाज के संदर्भ में यह देखने की जरूरत है कि यह कैसे कार्य करती है, यह कैसे चलायी जा रही है, आप उत्पादन कैसे करते हैं और आप चीजें कैसे कराते हैं. हम इस विषय की एक बहुत स्पष्ट और गहरी समझ की जरूरत है. हमारे देश में क्या हो रहा है इस बात के बहुत गहन अध्ययन की आवश्यकता है. आज का विषय 'चुनाव सुधार: संवाद और विकल्प' - एक सही और उपयुक्त विषय है. मुझे आपको अवश्य बताना चाहिए कि हम एक गौरवपूर्ण राष्ट्र हैं, और जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया है हमारा लोकतंत्र बहुत युवा है. हम हमारे देश के आँकड़े जानते हैं. इस देश में कुल 78 करोड़ मतदाता है. जनसंख्या वृद्धि की इसी दर के साथ 2014 तक यह आंकड़ा 80 करोड़ हो जाएगा जो संयुक्त यूरोप और अफ्रीका की कुल आबादी से अधिक है. आज 5 लाख गांवों में 9 लाख मतदान केंद्र हैं लेकिन 2014 तक मतदान केंद्रों की संख्या 11 लाख के आसपास होगी. एक मतदान केंद्र में 5 कर्मियों की जरूरत है तो हमें चुनाव आयोजित करने के लिए कम से कम 55 लाख कर्मियों को तैनात करने की जरूरत है. आप चुनाव प्रबंधन की प्रक्रिया के आकार और पैमाने की कल्पना कर सकते हैं. इसीलिए दुनिया भर से आए लोग चुनाव आयोग से सदमे में पूछते हैं कि हम कैसे इस तरह के बड़े पैमाने की प्रक्रिया का प्रबंधन करने में सक्षम हैं. हर कोई जानता है कि यह एक बड़ा ऑपरेशन है.

यह मुद्दा बहुत बड़ा है और मैं यहाँ स्वीकार करता हूँ कि हम 1975 से अब तक सुधारों के बारे में बात कर रहे हैं. मेरे सेवा में आने से एक वर्ष पहले इस देश में चुनाव सुधारों का अध्ययन करने के लिए पहली समिति नियुक्त हुई. तो 1974 के बाद से हमारे पास तारकुंडें समिति की रिपोर्ट, गोस्वामी समिति की रिपोर्ट, इन्द्रजीत इन्द्रजीत गुप्त समिति की रिपोर्ट और उसके बाद 1998 से निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट हैं और नागरिक समाज से आप सभी सज्जनों का दबाव चुनाव सुधारों के लिए

कोशिश करता रहा है. सैकड़ों सिफारिशें हैं, लेकिन दुर्भाग्य से हमने आज तक ज्यादा नहीं किया है.

इन सब रिपोर्ट और सिफारिशों में से मैं आप सभी और मेरे लिए चिंता के केवल चार प्रमुख क्षेत्रों तक अपने को सीमित रखूँगा. जैसा कि हमारे कश्यप महोदय जानते होंगे कि इस क्षेत्र में चिंता सबसे बड़े मुद्दे क्या हैं. वह भारत के संविधान पर शीर्ष विशेषज्ञ हैं. जब हम बच्चे थे तो वो हमारे गुरू हुआ करते थे. जब मैं अकादमी में शामिल हुआ वहाँ कानून के एक प्रशिक्षक थे जो हमसे पूछते थे कि संवैधानिक मामलों में विशेषज्ञ कौन हैं. हम सुभाष कश्यप का नाम लिया करते थे. वह उनके नाम की सिफारिश करते थे और उस के बाद से हमें कश्यप सर की किताब पढ़नी पड़ती थी. एक और बात का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है कि कोई प्रशासनिक सेवा में शामिल होने के बाद पढना बंद कर देता है. हालांकि प्रशिक्षण संस्थानों के हमारे सभी निदेशकों और प्रशिक्षकों ने हमें सलाह दी कि हम अध्ययन को रोकें नहीं, हम सभी जानते हैं कि सेवा में शामिल होने के बाद हम पढना बंद कर देते हैं. उसी दिन से हमारे दिमाग सुस्त हो जाते हैं. तो कृपया अपनी यह आदत विकसित न होने दें. विषय पर वापस लौटते हैं, सुधार के लिए सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा अपराधियों को निर्वाचित होने से वंचित करना है. मुझे लगता है कि इस बारे में कोई दो राय नहीं है. हम सभी युवा उम्र से आज तक देखते हैं कि अगर कोई जो एक खूनी, डकैत, या बलात्कारी है और वह उच्च पद प्राप्त कर लेता है तो हमें कैसा लगता है. यदि हम उसे महोदय, माननीय या सम्मानित सर जैसे शब्दों से पुकारना चाहते हैं तो वह यह सम्मान पाने योग्य होना चाहिए. तो क्या इस संबंध में सुधार की जरूरत है. एक मूलभूत मुद्दा यह है कि हमें अपराधी को वंचित करना चाहिए. मैं एक कदम आगे जाउँगा. आज भारत में 10 लाख से अधिक विचाराधीन कैदी हैं जो सलाखों के पीछे हैं. वे वोट के लिए या रोजगार पाने के हकदार नहीं हैं. तो आप 2, 3 या 4 साल के

लिए किसी भी आरोप के बिना भी एक व्यक्ति को सलाखों के रखते हैं. वह बाहर जाने के लिए सक्षम नहीं है, वह वोट मांगनें में सक्षम नहीं है और वह अपने काम करने में सक्षम नहीं है. संक्षेप में उसे जीवन के अधिकार, उपासना, संवैधानिक अधिकार की गारंटी प्राप्त नहीं होती है. अगर आप भारत के एक दोषी नागरिक को उसके मौलिक अधिकार नही देते हैं, तो आपको कैसे चुनाव लड़ने का अधिकार है और कैसे संसद के सदस्य बन जाते हैं जो आपका मौलिक अधिकार नहीं है. मुझे लगता है कि यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां हमें चर्चा करने की जरूरत है. मुझे लगता है कि एक व्यक्ति है जो एक अपराधी है वह एक्स, वाई या जेड सुरक्षा का हकदार कैसे हो सकता है.

दूसरा मुद्दा धनबल का है. 1985-86 तक हमारे मंत्री कभी किसी भी *खाने पीने* या सरकारी सेवाओं से स्वागत की उम्मीद नही करते थे. मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से यह बता रहा हूँ. अब यह ठीक उल्टा है. 1987-88 से चीजें बदल गई हैं. अब मैं जानता हूँ अचानक परिवर्तन कैसे हुआ. आज सब कुछ राज्य की कीमत पर होता है. यह हम सभी के लिए अध्ययन का एक क्षेत्र है.

तीसरा मुद्दा है प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में पेड न्यूज का मामला. मैं आपको स्पष्ट रूप से बता सकता हूँ कि 1991 के बाद से प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बड़े व्यापारिक घरानों के स्वामित्व में है. इससे पहले हम महान साहित्यिक योग्यताओं वाले, ईमानदार प्रतिष्ठित व्यक्तियों और ठोस पत्रकारों के स्वामित्व वाले अखबारों के बारे में सुनते थे जिनका उद्देश्य देश का लाभ था. लेकिन आज मुझे यह कहने में खेद है कि कुछ प्रतिष्ठित अखबारों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को छोड़कर इनमें से ज्यादातर बड़े उद्योगपतियों, बड़े व्यापारिक घरानों, बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के स्वामित्व में हैं जिनकी अपनी राजनीतिक संबद्धता और निहित स्वार्थ हैं. आप हाल ही में उत्तर प्रदेश, पंजाब या हिमाचल प्रदेश के चुनाव में देख सकते हैं हमें अखबारों और मीडिया के खिलाफ सैकड़ों याचिका मिली हैं और यह कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण राजनीतिक दलों के

स्वामित्व में हैं. वे अपनी ओर से लिखने के लिए और अन्य लोगों के खिलाफ भेदभाव के लिए चलाए जाते हैं. मुझे लगता है कि प्रेस की स्वतंत्रता जो सबसे महत्वपूर्ण थी और जिससे निष्पक्ष और हमारे लोकतंत्र का स्तंभ बनने की अपेक्षा की जाती थी वह अपने उद्देश्य से भटक रही है. हम देख सकते हैं कि वहाँ थोड़ा विचलन है. पेड न्यूज आज सबसे महत्वपूर्ण चुनाव गतिविधि बन गयी है. आजकल बूथ कैप्चरिंग और बाहुबल कम हो गये हैं लेकिन इसे पेड न्यूज द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है और बहुत ही तीव्रता से. तो यह उन सभी के लिए बहुत महत्व का एक क्षेत्र है जो लोकतंत्र में विश्वास करते हैं, जो राष्ट्र निर्माण के कार्यक्रम में विश्वास करते हैं और जो देश के हित में विश्वास करते हैं. मैं संगोष्ठी के आयोजकों से अनुरोध करता हूँ कि वह इस मुद्दे को लें और उस पर काम करें.

अंत में, क्योंकि हम राजनीतिक दलों द्वारा काले धन के इस्तेमाल के बारे में बात करते हैं, हम सभी को विश्वास है कि न्यूनतम पारदर्शिता होनी ही चाहिए. उचित लेखा-जोखा होना चाहिए. मुझे लगता है कि हम नागरिक समाज और आप जैसे संगठनों के सहयोग से निश्चित रूप से वित्तीय पारदर्शिता के संबंध में सुधार और जवाबदेही लाने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं.

जो अन्य मुद्दे हैं आपकी चर्चा में आ जाएगें, लेकिन मैंने सोचा कि इनमें से कुछ मैं आप सभी के साथ साझा करूँ. मुझे यकीन है कि यह इस चर्चा का हिस्सा हो जाएगा और आप ठोस सुझावों के साथ आगे आएंगे. और मैं फिर दोहराना चाहता हूँ कि हम बहुत युवा लोकतंत्र हैं, इसलिए बहुत से सुधारों की गुंजाइश अभी बाकी है.

आज देश की मांग है कि हमारे नागरिक समाज और इस देश के लोगों द्वारा और अधिक समर्थन और अधिक प्रसार और अधिक भागीदारी होनी चाहिए. मैं यहाँ इन मुद्दों के बारे में एक बात का उल्लेख करना चाहूँगा कि हम चुनाव सुधारों और राजनीतिक सुधारों पर केवल एक बार चर्चा करते हैं जो सही नहीं है. इस पर

नियमित बहस होनी चाहिए. मैं हमेशा एडीआर के प्रोफेसर चोकर से हमेशा एक बात कहता हूँ कि कृपया केवल चुनाव के दौरान सक्रिय नहीं हो. दरअसल हमारे गतिविधि चुनाव से पहले ज्यादा हो सकती है क्योंकि चुनाव के दौरान हमें इसके लिए समय नहीं मिलेगा. लोकतंत्र के समर्थकों के लिए, अच्छे लोगों के चुनाव के लिए नियमित गतिविधि होनी चाहिए न कि कभी-कभार. मेरी देश के लोगों को भी यही अपील है. मुझे बहुत गर्व है कि आपने बहुत दिलचस्प विषय के साथ काम शुरू कर दिया है और इस तरह की नियमित गतिविधियाँ होनी चाहिए. एक देश को विकसित करने के लिए जबरदस्त प्रयासों की आवश्यकता है. आपको नियमित प्रेरणा अभियान, नियमित रूप से प्रचार अभियान चलाने हैं.

हमने कॉलेज में सीखा है कि सतर्कता स्वतंत्रता की कीमत है. जैसा कि श्री अजीत ने उल्लेख किया हमें हमेशा सतर्क रहना है. हमारे पड़ोस में लोग अपने मौलिक अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं. ऐसी स्थिति हमारे भारत में मौजूद नहीं है. दरअसल मैं कहना चाहता हूँ और पता नही कि कश्यप साहब मेरे साथ सहमत हैं या नही, भारत का संविधान दुनिया में सामाजिक सुधार पर बेहतरीन दस्तावेजों में से एक है. मैं नहीं जानता कि आप में से कितने मेरे साथ सहमत हैं. मैं इस पर दृढ़ता से विश्वास करता हूँ और आप सभी को और विशेष रूप से छात्रों के लिए यह कहना है कि हालांकि यह लिखित है, फिर भी भारत का संविधान सामाजिक सुधार पर सबसे अच्छा दस्तावेज़ हैं. हम 2010-11 में सकारात्मक कार्रवाई के मुद्दे के बारे में बात कर रहे हैं, लेकिन भारत के संविधान में साढ़े छह दशक पहले उल्लेख किया गया है कि राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के तहत और विभिन्न मौलिक अधिकारों के तहत सकारात्मक कार्रवाई होनी चाहिए. इसलिए मुझे विश्वास है कि भारत का संविधान सामाजिक सुधार पर सबसे मौलिक और सबसे अच्छा दस्तावेज़ है. मुझे दृढ़ विश्वास है कि हमारे देश भारत को संविधान की दिशा के साथ आगे

बढ़ना चाहिए और यह ठीक तरह से लागू किया जाए ताकि लोगों के साथ-साथ हमारा देश भी महान होता जाए.

अंत में मैं यहाँ उल्लेख करना चाहता हूँ कि इस देश में हम सबसे युवा, बड़ी आबादी हैं और उच्च विकास दर के साथ आगे बढ़ रहे हैं, मुझे आपको ईमानदारी से बताना चाहिए और यह मेरे निजी अनुभव से भी आता है कि भारतीय सबसे सरल और मासूम लोग हैं. वह बहुत ही साधारण चीजों के साथ भी खुश हो जाते हैं, चाहे यह पीने का पानी हो, चाहे सड़क, स्कूल या औषधालय हों.

मैं आज आपके साथ कुछ साझा करना चाहता हूँ जो आज तक किसी को कभी नहीं बताया क्योंकि यह इस विशेष संगोष्ठी के लिए प्रासंगिक है. मैं 1981-82 में आंध्र प्रदेश के खम्मम जिले में जिला विकास अधिकारी के रूप में तैनात किया गया. यह तत्कालीन केंद्रीय स्टील मंत्री श्री वेंकट राव का जिला था. वह आंध्र प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री थे. उस समय हम राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को लागू कर रहे थे. उस समय खम्मम जिला नक्सली आंदोलन की वजह से काफी कुख्यात था. आंध्र प्रदेश में खम्मम, वारंगल और करीमनगर और अन्य जिले नक्सली आंदोलन के कारण कुख्यात थे और चरमपंथियों के क्षेत्र घोषित किए गए थे. हम उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के बाद देश में नंबर 2 थे और एक युवा व्यक्ति के रूप में मैं देश में अपने जिले को नंबर 1 करने के लिए आकांक्षी था. हमारा उद्देश्य जिले को नंबर 1 करना और देश के प्रधानमंत्री से कुछ पुरस्कार प्राप्त करना था. रामचंद्रपुरम नाम की एक पंचायत थी. हमेशा की तरह हमारे नक्सली भाइयों और बहनों ने एक बंद का आह्वान कर दिया और कहा कि वहाँ कोई काम नहीं होगा. मैंने हर पखवाड़े और हर महीने पूछा कोई काम क्यों नहीं हो रहा. मेरे पीडब्ल्यूडी इंजीनियर रामकृष्ण राव ने कहा कि नक्सलियों ने बंद का आह्वान कर दिया है और हम पिछले एक पखवाड़े से वहाँ कोई काम नहीं कर सके हैं. मैंने कहा कि यह एक आदिवासी क्षेत्र है वहाँ लोगों

का क्या होगा वह किसी काम के बिना भूखे रहेंगे. मैंने अपने इंजीनियर और पुलिस अधिक्षक को फोन किया और कहा कि मैं शनिवार और रविवार को वहाँ जाना चाहता हूँ और इस समस्या का समाधान क्या है वहाँ समय बिताकर देखना चाहता हूँ. मैं वहाँ गया, यह जिला मुख्यालय से 130 किमी दूर था. मैंने सभी लोगों से मुलाकात की और भद्राचलम नामक जगह पर एक बैठक की. मैंने क्षेत्र के नेताओं को बुलाया. मुझे आश्चर्य हुआ जब एक खूबसूरत युवती और दो लड़कों ने मेरे कमरे में प्रवेश किया. मैंने उन से कहा कि आप गलत जगह आ गए हैं लेकिन उन्होंने मुझे बताया कि वे सही जगह पर है. मैं बहुत हैरान था और मैंने उनसे पूछा कि तुम कौन हो. एक लड़के ने कहा कि मैं आंध्र मेडिकल कॉलेज से हूँ. एक बालक ने कहा कि मैं वारंगल में क्षेत्रीय इंजीनियरिंग कॉलेज से हूँ और महिला ने कहा कि मैं भी मेडिकल कॉलेज, आंध्र प्रदेश से हूँ. फिर मैंने पूछा कि आप यहाँ क्यों आए हैं. उन्होंने कहा कि हम बातचीत करने आए हैं कि काम फिर से कैसे शुरू हो. मैंने कहा कि आप युवा लड़के और लड़कियाँ हैं और आपको अपनी जगह पर अध्ययन करना चाहिए और आप यहाँ क्यों हैं. उन्होंने कहा कि हम बंद काम के बारे में बहुत चिंतित हैं और क्या किया जा सकता है. लड़की ने मुझसे कहा सर, हम प्रशासन से और विशेष रूप से आपकी सेवा से असंतुष्ट हैं. हम इस देश के लोगों के लिए न्याय चाहते हैं. उन्होंने पूछा कि आप संविधान के किस प्रावधान के तहत पुरुष मजदूर को 8 रुपए और महिला मजदूर को 6 रुपये का भुगतान कर रहे हैं. हम आपसे पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए एक ही दर का भुगतान करने के लिए कह रहे हैं. तब मैंने सोचा कि वे बहुत गंभीर सवाल पूछ रहे हैं और मैंने अपने अधीक्षक से पूछा कि कोई ऐसा प्रावधान है या नहीं. उन्होंने कहा कि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है. तब मैं उनकी मांग पर सहमत हो गया. इसी के साथ काम फिर से शुरू हुआ. उन्होंने अगली बात पूछी कि आप एक महीने के बाद भुगतान कर रहे हैं और ऐसे में गरीब अपना दैनिक

जीवन यापन कैसे कर सकते हैं. आपको प्रत्येक सोमवार को बाजार के दिन पर भुगतान करना होगा. मैं यह भी करने के लिए सहमत हुआ. उन्होंने कहा कि वे चले जाएंगे लेकिन कुछ चीजों का उल्लेख करना चाहते हैं. उन्होंने कहा कि श्री ब्रह्मा आप एक युवा हैं और असम से हैं आपको कुछ बातें पता होनी चाहिए. आपकी संसद भूमि सीमा अधिनियम लायी. कितनी एकड़ अधिशेष भूमि की आपने ली है? मैंने कहा कि हमने बहुत ली है. इसमें से कितनी समाज के कमजोर वर्ग के बीच वितरित की गयी है? मामले उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में क्यों लंबित हैं? फिर आपके भूमि सुधार का परिणाम क्या है? मैंने भी खेद प्रकट किया और कहा कि हाँ, आधे मामले अदालतों में लंबित हैं. नंबर एक तो भूमि सीमा अधिनियम के बाद भी भारत के लोगों को कोई लाभ नहीं मिला हैं. दूसरे, है कि किसी नक्सली या उग्रवादी समूह ने बंधुआ मजदूरी के उन्मूलन के लिए नही कहा है. यह आपकी संसद है जिसने बंधुआ मजदूर अधिनियम पारित किया है. लेकिन आपने कितने बंधुआ मजदूर स्वतंत्र कराए हैं और उनका पुनर्वास किया है? तो सुधार कहाँ है महोदय? फिर उन्होंने तीसरा बिंदु उठाया कि आपकी सरकार ने देश में न्यूनतम मजदूरी उन्मूलन अधिनियम पारित किया है. लेकिन उसे लागू कौन कर रहा है? उन्होंने कहा कि जिस दिन आप इसकी मूल भावना में भारत के संविधान को लागू कर देंगे, महोदय हमें आने की कोई जरुरत नही होगी. उन्होंने कहा कि एक युवा व्यक्ति और भारत की सरकार में लोक सेवक के रूप में आप से जो बुनियादी बातें लागू करने के लिए कहा गया है कृपया आप उन्हें लागू करें हम आपके पास कभी नहीं आएंगे. वे यह कह कर चले गये.

अंत में, मुझे आपको एक और बात बतानी होगी. इस देश में बहुत युवा हैं और हमें अभी मीलों जाना है. हमें अभी भी विशाल दूरी तय करनी है. मुझे लगता है कि कमी का एक क्षेत्र, आवश्यक सुधार हैं जो मुझे विशेष रूप से विकसित देशों के साथ और

दुनिया के अन्य देशों के साथ तुलना करने पर दिखता है. सबसे महत्वपूर्ण भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का आर्थिक विकास है. हमें कच्छ से लेकर पश्चिम बंगाल तक 15000 किमी सीमा क्षेत्र मिला है. सीमावर्ती इलाकों में रहने वाले लोगों के विकास के लिए क्या हो रहा है?. इस संगोष्ठी में मैं आप सभी को प्रस्तावित करता हूँ कि हमें इस तरह के बहुत ठोस, बहुत ही सक्षम और गैर-राजनीतिक थिंक-टैंक के विकास की जरूरत है. उम्मीद है कि आप राजनीति संबंधित पार्टी नहीं हैं जैसा अजीत कुमार ने उल्लेख किया है. विभिन्न मुद्दों पर सुझाव और मार्गदर्शन देने के लिए बहुत सारे नागरिक सामाजिक संगठनों की जरूरत है. हालांकि हम एक बड़े देश हैं, दुर्भाग्य से, हमें अभी भी विश्वविद्यालयों और अन्य क्षेत्रों में थिंक-टैंक विकसित करने हैं. मुझे यकीन है कि आने वाले दिनों में एक बड़ी संख्या में थिंक-टैंक और एनजीओ समूह देश के लाभ के लिए आगे आएंगे. अंत में, मैं आप सभी को और विशेष रूप से इस संगोष्ठी के आयोजकों ***पीपल फॉर नेशन*** को मुझे आप सभी के लिए बात करने और आप सब के साथ कुछ समय बिताने का अवसर देने के लिए धन्यवाद देता हूँ. मैं आप सभी से और अधिक सीखना चाहता हूँ. जो कुछ भी सिफारिशें आप तैयार करें कृपया हम सभी को भेजें, आपके सुझाव पाकर हमें खुशी होगी और हम भविष्य में अपनी समस्याओं का सामना मिलकर कर सकते हैं. मैं आप सभी को धन्यवाद देता हूँ और आप सभी के द्वारा उठाए गए बिंदुओं को सुनना पसंद करूँगा. मुझे यकीन है कि यह संगोष्ठी कुछ बहुत महत्वपूर्ण सुझाव देगी, मैं आप सभी को शुभकामनाएं और धन्यवाद देता हूँ. जय हिंद.

<u>सुभाष कश्यप</u>

मैं अब जस्टिस गुप्ता से अपनी बात रखने के लिए अनुरोध करता हूँ. जैसा की आप जानते हैं जस्टिस गुप्ता कई उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश रहे हैं.

न्यायमूर्ति वीके गुप्ता

श्री ब्रह्मा, श्री कश्यप, देवियों और सज्जनों. कुछ साल पहले मैं कलकत्ता उच्च न्यायालय में था. प्रसिद्ध कलकत्ता क्लब ने एक संगोष्ठी का आयोजन किया था. विषय था 'क्या हम सार्वभौमिक मताधिकार के लिए तैयार हैं?' यह मूल रूप से एक बहस थी. वहाँ प्रस्ताव के पक्ष में और खिलाफ बोलने वाले लोग थे. फैसला हुआ कि हम साढ़े पाँच दशक और 12-13 चुनाव के बावजूद अभी तक सार्वभौमिक मताधिकार के लिए तैयार नहीं हैं. मुद्दा था कि क्या इस देश में शासन का वेस्टमिंस्टर मॉडल विफल है या सफल है. माना गया कि वर्तमान में वेस्टमिंस्टर मॉडल सफल नहीं है. विकल्प क्या हैं? यह बिल्कुल एक बिल्कुल अलग विषय है. इन दोनों प्रकल्पनाओं का सार चुनाव था. चुनाव इस देश में क्या प्राप्त कर रहे हैं? चुनाव लोकतंत्र और अच्छे प्रशासन की ओर संकेत कर रहे हैं? चुनाव प्रणाली विफल हो गयी है या नहीं? जब मैं इस समारोह में आमंत्रित किया गया तब उस संगोष्ठी से संकेत लेते हुए मेरे दिमाग में कुछ विचार आए.

कुछ सामान्य मुद्दे हैं और कुछ महत्व के कुछ मुद्दे हैं. मैंने आज यहाँ बैठे हुए कुछ विचार इकठ्ठा किए हैं और वे किसी भी क्रम में नहीं हैं. सबसे पहले मैं श्री ब्रह्मा के साथ इस मुद्दे में शामिल होना चाहता हूँ कि क्या वह भारत को एक युवा लोकतंत्र पुकार सकते हैं? मेरी गणितीय गणना का कहना है कि हम 65 वर्ष के हैं. 65 साल के एक वरिष्ठ और इस मामले में एक नागरिक से पांच वर्ष अधिक है. देश में पहले ही 15 लोकसभा चुनाव और सैकड़ों विधानसभा चुनाव हो चुके हैं. जब मैं एक बच्चा था मैं जानता था कि भारत का निर्वाचन आयोग 5 साल में एक बार काम करता है. आजकल यह वर्ष भर काम करता है क्योंकि लगभग हर महीने इस देश में कोई चुनाव होता है. तो 65 साल का होने और इतने चुनावों के बाद इसे युवा लोकतंत्र कहना शायद गलत है और अब हमें खुद को एक परिपक्व, पुराने और अनुभवी

लोकतंत्र के रूप में पुकारना शुरू कर देना चाहिए. जो विचार मेरे दिमाग में आया वह विचार भर है वह मेरी राय नहीं हैं. लेकिन उन विचारों में मैं इस देश के आम नागरिक की सामान्य भावनाओं को प्रेषित करने की कोशिश करूंगा.

क्या सबसे पहले इस देश में एक सच्ची पार्टी व्यवस्था हो सकती है? क्या हमने इसके बारे में पर्याप्त सोचा है? क्या हम भारत को ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका के मॉडल पर आधारित दो पार्टी वाला लोकतंत्र बनाने के लिए कानून में संशोधन की कार्यवाही कर सकते हैं. यदि ऐसा होता है यदि संभव है तो क्या हम इस गठबंधन युग का अंत नहीं देख सकते हैं? गठबंधन भागीदार एक दूसरे को कैसे परेशान कर रहे हैं, वे लोकतंत्र कैसे विखण्डित रहे हैं, कैसे वे सामूहिक ज्ञान प्रक्रिया को हानि पहुँचा रहे हैं, आम सहमति कैसे लायी जाती है? इन सभी रोगों को शायद समाप्त किया जा सकता है अगर इस देश में दो पार्टी प्रणाली अपना ली जाए. मैं फिर से दोहरा रहा हूँ ये मेरे विचार और राय नहीं हैं. देश के विभिन्न कोनों में लोग क्या बात कर रहे हैं मैं केवल वही दोहरा रहा हूँ.

दूसरा बिंदु है कि क्या हम दागी उम्मीदवारों को रोक सकते हैं? क्या हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि केवल सभी तरह से साफ छवि वाले व्यक्तियों को ही चुनाव लड़ने की अनुमति दी जाए.

क्या राज्य धन से चुनाव के मुद्दे पर से चर्चा की गई हैं? राज्य द्वारा वित्त पोषण संबंधित दो मुद्दे हैं: क्या चुनाव खर्च की कोई सीमा होनी चाहिए और क्या राज्य को यथासंभव चुनाव व्यय वहन करना चाहिए.

अनिवार्य मतदान क्या मतदान को अनिवार्य बनाने के लिए कानूनों को संशोधित किया जाना चाहिए? यह एक बहुत स्पष्ट तथ्य है. इस देश में तथाकथित उच्च वर्ग, राय निर्माता, वो लोग जिन्हें वास्तव में पता है कि वोट कैसे डाला जाता है, जो उम्मीदवारों और दलों के गुणों पर अपना मन बना सकते हैं, उनमें से अधिकांश वोट ही नहीं डालते हैं. उनमें से अधिकांश मतदान बूथ पर जाकर एक पंक्ति में खड़े रहना और वोट डालना अपना अपमान समझते हैं.

उनके लिए मतदान की तारीख मतदान बूथ में जाने के बजाय छुट्टी का आनंद उठाने का दिन है. ऐसे में मतदान अनिवार्य बनाया जाना चाहिए या नहीं?

क्या उम्मीदवारों को एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ने से रोकने के लिए कोई कानून नहीं बनाया जाना चाहिए ? अगर वे जीतते हैं तो उन निर्वाचन क्षेत्र में मतदान जरुरी है जो वो खाली कर/छोड़ रहे हैं . किसी विधायक को चुनाव लड़ने की अनुमति क्यों दी जानी चाहिए? एक सांसद को विधानसभा चुनाव लड़ने या इसका विपरीत करने की अनुमति है . यदि किसी सांसद की किसी और निर्वाचन कार्यालय के लिए चुनाव लड़ने में दिलचस्पी है तो वह इस्तीफा दे और चुनाव लड़े. क्या संविधान में इस प्रावधान को अब हटा देना चाहिए जिसमें एक गैर विधायक को भी मंत्री के पद को सुशोभित करने की अनुमति है? मुझे तमिलनाडु का एक उदाहरण याद है जहां एक गैर विधायक मंत्री या राज्य का मुख्यमंत्री बन गया. मुझे कुछ उदाहरण पता हैं जहां इस प्रावधान का दुरुपयोग बार-बार किया गया था जब 5 महीने और 29 दिन बाद वह इस्तीफा दें तो तीसरे या चौथे दिन वह फिर से मुख्यमंत्री बने. मैं अभी तक यह समझ नहीं पाया ममता बनर्जी पश्चिम बंगाल में विधानसभा चुनाव के साथ आम चुनाव क्यों नहीं लड़ी. जैसा कि मैंने बताया की

मैं कलकत्ता उच्च न्यायालय में भी 5 साल के लिए काम कर चुका हूँ इसलिए मुझे बंगाल के बारे में बहुत अच्छी तरह से पता है. पूरी दुनिया और सुश्री ममता बनर्जी को खुद भी पता था कि इस चुनाव के बाद अगर टीएमसी बहुमत हासिल करता है तो उनके अलावा कोई और मुख्यमंत्री नहीं बनेगा और फिर भी वह चुनाव नहीं लड़ीं.

वह एक गैर विधायक के रूप में मुख्यमंत्री बनी और फिर अपने ही पार्टी के सदस्य के द्वारा खाली की गयी सीट से निर्वाचित हुई और इसके बाद लोकसभा सीट से इस्तीफा दिया.

पहले राज्यसभा के लिए चुने जाने के लिए उम्मीदवार को राज्य का निवासी होना जरुरी था. मुझे लगता है अब ऐसा कोई नियम नहीं है. एक भावी राज्यसभा सदस्य एक झूठे पते से शुरूआत करेगा. मुझे ऐसे सैकड़ों उदाहरण पता हैं जहाँ सबसे दूर उत्तरी राज्य से लोग सबसे दूर दक्षिणी राज्य के लिए नामांकन भरते हैं.

मुझे ऐसे सैकड़ों उदाहरण पता हैं जहाँ सबसे दूर उत्तरी राज्य के लोग सबसे दूर दक्षिणी राज्य जाकर चुनाव निर्वाचन के लिए नाम लिखवाते, झूठे पंजीकरण पर नामांकन पत्र भरते और राज्यसभा के लिए चुन लिए जाते हैं. सभी से विनम्र क्षमा याचना के साथ, मैंने आज का अखबार पढ़ा हमारे प्रधानमंत्री असम के लोगों को कह रहे है कि मैं एक बेघर आदमी था और आपने मुझे एक घर दिया. तो हमारे प्रधानमंत्री दिल्ली या पंजाब या कहीं और से असम गये, एक पता मिल गया और वो राज्यसभा के लिए चुन लिए गये.

जन प्रतिनिधि को वापस बुलाने का अधिकार एक विश्व व्यापक घटना नहीं है. मैं नहीं जानता कि कितने देशों में इसका प्रावधान है. लेकिन एक बार आप 5 साल के लिए चुन लिए गये तो आप न केवल अपने चुनाव क्षेत्र को भूल जाते हैं ,न केवल अपनी शपथ को भूल जाते हैं, आप पूरी तरह ज़मीनी हकीक़तों से ही बेखबर हो जाते हैं आपको लगता है कि आप एक विधायक या मंत्री परिषद के एक सदस्य या मंत्री परिषद के अध्यक्ष होने के नाते किसी के प्रति जवाबदेह नहीं हैं. आप पूरी तरह से हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों की तरह प्रभावशून्य/मुक्त हैं, जिन्हें लगता है कि कार्यकाल की सुरक्षा तो उनके पक्ष में इतनी मजबूत है कि केवल महाभियोग प्रक्रिया से ही उन्हें हटाया जा सकता है तो उन्ही की तरह आपका कहना है कि किसी न्यायपालिका का हस्तक्षेप, किसी प्रेस का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और हमें 5 साल काम करने दिया जाना चाहिए क्योंकि जनादेश 5 साल के लिए है. अगर वापस बुलाने का अधिकार के प्रावधान को लागू किया जाता है, तो शायद इन लोगों में कुछ विवेक प्रबल हो कि ऐसी परिस्थितियों में हमें भी वापस बुलाया जा सकता है. क्या हम जरूरी कामकाज के आधार पर कुछ बुनियादी पात्रता तय करने का नुस्खा नहीं अपना सकते ?

मैं अन्य पात्रता की बात नहीं कर रहा हूँ. उदाहरण के लिए, सबसे महत्वपूर्ण,

अधिकतम आयु सीमा. आप चुनाव लड़ने के एक अधिकतम आयु सीमा तय क्यों नही कर सकते हैं? यदि आप न्यूनतम आयु सीमा तय कर सकते हैं अधिकतम आयु सीमा क्यों नहीं तय कर सकते हैं? स्वास्थ्य क्यों नहीं? आपको स्वस्थ व्यक्ति होना चाहिए जब आप एक विचारशील मंडल का हिस्सा बनने जा रहे हैं जो इस देश के लिए कानून बनता है, जो इस देश का भाग्य और तकदीर का फैसला करते हैं. यदि किसी भी सरकारी सेवा के लिए चिकित्सीय जाँच की आवश्यकता है और अगर कई सरकारी सेवाओं के लिए वार्षिक चिकित्सा जांच की आवश्यकता है, तो आप यह

आज्ञा क्यों नहीं दे देते कि इस आदमी को नामांकन पत्र दाखिल करने से पहले एक स्वास्थ्य प्रमाणपत्र प्राप्त करना होगा? कुछ बुनियादी शैक्षिक योग्यता के बारे में क्या सोचा गया है? मैं यह नहीं कहता कि आप एक विधि स्नातक या चिकित्सा स्नातक या इंजीनियरिंग में स्नातक या कृषि स्नातक होने चाहिए. कम से कम मैट्रिक या बारहवी पास तो होना चाहिए. श्री ब्रम्हा कहते हैं रातों रात आप एक विधायक और अगली सुबह मंत्री बन जाते हैं और 1975 बैच का आईएएस अधिकारी जा कर यह कहकर हाजिरी देता है की साहब क्या हुक्म है (मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ) उनमें सैकड़ों ऐसे हैं जो कभी हाई स्कूल नहीं गये हैं. जब मैं झारखंड का मुख्य न्यायाधीश था, मैं जानता था कि इस लगभग 80 विधायकों में 20 से अधिक मैट्रिक पास नहीं होंगे. मुझे लगता है आखिरी चुनाव याचिकाएँ हैं. एक समय था जब चुनाव आयोग के अलावा चुनाव अधिकरण भी हुआ करते थे. श्री कश्यप हमें बताएँगे कहाँ अदालतों के साथ चुनाव अधिकरणों के विकल्प की जरूरत थी और यह क्यों किया गया था. किसी भी उच्च न्यायालय को देख लें लाखों मामलें लंबित हैं.

साधारण मामलों में 10, 20, 30 सालों तक फैसला नहीं आता. चुनाव याचिकाओं की सुनवाई के लिए किसी मुक़दमे की तरह संपूर्ण परीक्षण की आवश्यकता होती है और कई बार एक मुक़दमे से भी अधिक.

सबूत का प्रबंध याचिकाकर्ताओं और उत्तरदाताओं को करना होता है. जब प्रतिवादी की बारी आती है सबूत को आगे बढाने की तो वह देश के विभिन्न भागों से 200 गवाहों कि सूची तैयार करता है.गवाहों के सम्मनों की तामील करने में सालों लगते हैं.

तो अदालतों में क्यों जाना? अदालतों से चुनाव याचिकाओं को वापस लिया जाये और उस के लिए राज्य और राष्ट्रीयस्तर पर अधिकरणों का गठन किया जाये. सुनिश्चित किया जाए कि ऐसे प्रावधान लागू हों जिससे चुनाव अधिकरणों को 6 महीनों के

अन्दर चुनावी याचिकाओं पर फैसला लेने की आदेश मिले. श्री सुभाष कश्यप ने काफी लिखा है. वो हमें बताएँगे कि इस देश में अब तक दायर 10000 चुनावी याचिकाओं में से अगर एक का भी निपटारा 6 महीनों से पहले हुआ हो तो. मुझे लगता है कि उनमें से 99 प्रतिशत मामले तो सदन का कार्यकाल खत्म होने से पहले निपटाए नहीं जाते. कम से कम ऐसे हर उम्मीदवार की कोशिश तो यही होती है और 99 प्रतिशत बार वह सफल होता है और लोकतंत्र हताहत .

तो ये कुछ विचार हैं. मैंने सोचा था कि आप कुछ मुद्दों पर विचार – विमर्श करेंगे,कुछ निष्कर्ष रिकॉर्ड होगा और कम से कम चुनाव आयोग को सिफारिशें भेजेंगे. चूँकि चुनाव आयुक्त भी यहाँ मौजूद हैं हम उनसे इस बारे में चुनाव आयोग की राय और सिफारिशें प्रदान करने का अनुरोध करते हैं ताकि वह सही जगहों तक पहुँच जाये. आपका बहुत बहुत शुक्रिया .

सुभाष कश्यप

न्यायमूर्ति गुप्ता आपका धन्यवाद. हम समय से थोड़ा पीछे चल रहे हैं, लेकिन मैं कुछ सवाल स्वीकार करूँगा. मेरे ख्याल से कुल 5 सवाल .

प्रश्न: मैं श्री वी.के. गुप्ता को पूछना चाहता हूँ कि क्या हमारे प्रधानमंत्री का असम के किसी स्थानीय उम्मीदवार को वंचित कर खुद को निर्वाचित करना सही है ?

न्यायमूर्ति गुप्ता: इसमें कोई सवाल नहीं है. मैंने जो कहा उसमें आपने थोडा और जोड़ दिया.

प्रश्न: जब हमने चुनाव अधिकरण का गठन किया तो वह न्यायपालिका ही थी जिसने कहा कि आप न्यायिक समीक्षा की शक्ति कम कर रहे हैं क्योंकि आप चुनाव अधिकरण और उच्च न्यायालय की शक्ति को बराबर नहीं कर सकते. तो मेरा सवाल है हमें पहले न्यायिक सुधार की जरुरत है या चुनावी सुधार की ?

जस्टिस गुप्ता: हमें न्यायिक सुधारों की भी उतनी ही जरुरत है जितनी चुनावी सुधारों की. कृपया न्यायिक सुधारों पर एक और संगोष्ठी का आयोजन करें और मुझे आमंत्रित करें. न्यायिक सुधार की आवश्यकताओं पर मेरी टिप्पणियां अधिक कटु होंगी.

प्रश्न: मैंने ये जानने के लिए कि कांग्रेस पार्टी को कितना धन विदेशी स्त्रोतों से आता है और कितना भारतीय स्त्रोतों से, चुनाव आयोग के साथ एक आरटीआई दायर किया था . दूसरा संलग्न सवाल यह था कि कॉर्पोरेट घरानों विशेष रूप से टाटा, बिड़ला और अंबानी से कितना धन प्राप्त किया जाता है. चुनाव आयोग ने सिर्फ यह कहा कि जो कुछ भी उस राजनीतिक दल के चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा हमारी वेबसाइट पर दर्ज किया है उसे देख लीजिये. हालांकि ये पता चलने के बाद कि हमारे किसी भी सवाल का कोई जवाब नहीं दिया गया यह अभी भी एक सवाल है.

एच एस ब्रह्मा: मैं निश्चित रूप से आपको इस बारे में और अधिक बता दूँगा. मुझे उसके लिए अपने कार्ड और पता दे दीजिए. लेकिन मैं आपको बता दूँ कि राजनीतिक दलों और उनके फंडिंग के बारे में सारी जानकारी हमारे पास है और मुझे समझ नहीं आता कि क्यों वो हम आपको नहीं देंगे. मैं पता करके बताता हूँ.

प्रश्न: क्या हम हमारे आम चुनावों में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली का पालन नहीं कर सकते हैं?

एच एस ब्रह्मा: यह हमारी स्थिति नहीं है और हम अभी भी एफपीटीपी प्रणाली का ही पालन कर रहे हैं.

प्रश्न: हमने हाल के चुनावों में देखा है कि हमारे देश में मीडिया पर नियंत्रण की कोई अवधारणा नही है. हमें बहुत अच्छी तरह से पता है कि भले ही कोई मामला चुनाव

के दौरान आता है हम केवल चुनाव प्रक्रिया खत्म होने पर ही याचिका दायर कर सकते हैं. क्या चुनाव आयोग की मीडिया विनियमन के लिए कोई योजना है?

एच एस ब्रह्मा: निश्चित रूप से हमारे पास मीडिया के नियंत्रण के लिए प्रावधान हैं. इसके लिए सभी जिला स्तर पर टीमें है. लेकिन मैं आप के साथ पूरी तरह से सहमत हूँ कि हमें इसे और अधिक आक्रामक और प्रभावी बनाने की जरूरत है.

<u>श्री सुभाष कश्यप</u>

न्यायमूर्ति गुप्ता, श्री ब्रह्मा, पीएफएन के अध्यक्ष श्री मनोज अग्रवाल और यहां उपस्थित अन्य प्रतिष्ठित मित्रों. संसदीय परंपरा में अध्यक्ष बात नहीं करता है. यह कहा जाता है कि स्पीकर बोलता नहीं है. जब मैं यहाँ आने पर सहमत हुआ मैंने कहा था कि मुझे बोलने की आवश्यकता नहीं होगी और केवल कार्यवाही की अध्यक्षता करनी होगी. हालांकि, श्री मनोज अग्रवाल मेरे साथ सहमत नहीं होंगे. मैं यहाँ दो अन्य कारणों से भी आया. एक यह है कि श्री मनोज अग्रवाल मेरे पड़ोसी है और हम एक साथ रहते हैं. यहाँ आने का एक और कारण यह भी था कि यह विषय मेरे दिल के बहुत करीब है और कई वर्षों से विभिन्न पदों पर कार्य करने के अनुभव के दौरान चुनाव सुधारों के इस प्रश्न से मेरा वास्ता रहा हैं. पिछले तीन वर्षों से हम बंद दरवाजों के पीछे *कैंपेन फॉर गुड गवर्नेंस* के तत्वावधान में कुछ सबसे प्रतिष्ठित विचारकों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों, पूर्व मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ,शीर्ष बुद्धिजीवियों, प्रोफेसरों और राजदूतों से मिलकर कई छोटे समूहों की बैठकें कर रहे हैं.

हर कोई कहता है कि हम महत्वपूर्ण समय से से गुजर रहे हैं जिसका न्यायाधीश न्याय गुप्ता ने भी 'नाजुक समय' के रूप में उल्लेख किया हैं. तो हम अधिकतम 20 लोगों के इन छोटे समूह की बैठक कर रहे हैं है और समूह की संरचना हर बार बदल जाती है ताकि अधिक से अधिक लोगों को शामिल किया जा सके. तीन साल की इस कार्यवाही और इस तरह की दस बैठकों के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि

समस्याओं का स्रोत और राष्ट्र की परेशानी की जड़ चुनाव व्यवस्था में है. कई सुधार आवश्यक हैं: राजनीतिक सुधार आवश्यक हैं, न्यायिक सुधार आवश्यक हैं, प्रशासनिक और अन्य सुधार आवश्यक हैं. लेकिन अगर प्राथमिकता तय करनी हो, अगर यह फैसला करना हो कि केवल एक सुधार है जो कि किया जाना है और जो होना चाहिए, गलत या सही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह चुनाव सुधार होना चाहिए. एक, क्योंकि चुनाव लोकतंत्र की नींव हैं. हम अपनी प्रणाली को प्रतिनिधिक संसदीय लोकतंत्र कहते हैं. हम भारत के लोग खुद के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से सरकार चलाते हैं. चूंकि सरकार गठन के लिए प्रतिनिधि चुने जाने की जरूरत है, चुनाव लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए सबसे मौलिक हैं. चूंकि चुनाव सबसे मौलिक और मूलभूत हैं तो मैं श्री ब्रह्मा के प्रश्न का उत्तर देना चाहता हूँ कि चुनाव आयोग को लोकतंत्र का मूलभूत स्तंभ ही माना जाएगा. हमारे प्रतिष्ठित वक्ताओं और जिन्होने भी हस्तक्षेप ने यहाँ कई बहुत मूल्यवान बिन्दु दिए हैं. श्री ब्रह्मा ने कुछ बहुत ही बुनियादी बिंदुओं को छुआ. उन्होंने अपराधियों के वर्जन, धनबल की भूमिका, पेड न्यूज, पार्टी सुधारों, पारदर्शिता की जरूरत के बारे में कहा. उन्होंने एक टिप्पणी भी की और जिसके साथ मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि भारत का संविधान मूल रूप से सामाजिक - आर्थिक सुधारों का एक चार्टर है और यह निश्चित रूप से दुनिया के सर्वश्रेष्ठ संविधानों में से एक है यद्यपि यह सबसे लंबा संविधान है और बहुत कम लोगों ने इसे पढ़ा है. हालांकि मौलिक कर्तव्यों का अध्याय प्रदान करता है कि हर नागरिक को संविधान इसके , संस्थानों और इसके आदर्शों का सम्मान करना चाहिए. लेकिन मुझे लगता है कि जिसने संविधान पढ़ा है वह इस देश के शिक्षित नागरिकों का भी बहुत छोटा सा अंश होगा. देश में शिक्षितों के बीच भी भारी संवैधानिक निरक्षरता है.

बहुत संक्षेप में इस बात को रखते हुए और जिन समस्याओं का श्री ब्रह्मा और जस्टिस गुप्ता ने भी उल्लेख किया है, मेरा मानना है कि शासन घाटा, प्रशासनिक सेवाओं और न्यायपालिका दोनों में खराब वितरण प्रणाली का सवाल चुनाव के मौलिक प्रश्न से संबंधित किया जा सकता है. यदि आप सही तरह के लोगों का चुनाव कर सकते हैं तो आपको सही तरह की सरकार मिलती है और जब आप सही सरकार पाते हैं तो आपको सही शासन मिलता है. आपको बेहतर मंत्री मिलते है, तो आप बेहतर न्यायाधीश और बेहतर प्रशासक पाते हैं. श्री ब्रह्मा ने अपराधियों को वर्जित करने के बारे में बात की थी. अगर अपराधी अपने निर्वाचन क्षेत्र में सबसे लोकप्रिय व्यक्ति हो तो आप उसे कैसे वर्जित करेंगे . यदि उनकी जीतने क्षमता अधिक है तो राजनीतिक दल उन्हें टिकट देने से बच नहीं सकते क्योंकि राजनीतिक दल उम्मीदवार की जीतने क्षमता देखता है.

दूसरी बात जिसका आपने उल्लेख किया वह पैसे की शक्ति है. किसी भी राजनीतिक गतिविधि , किसी भी राजनीतिक पार्टी को चलाने, चुनाव अभियानों के लिए टनों पैसा लगता है. पैसे कहाँ से आने है? मुझे लगता है कि इस सवाल का जवाब देना होगा, इससे पहले कि हम अपराधी या पैसे शक्ति के बारे में बात करें. वह पैसे कहाँ से आने है? या तो आपको यह चुनाव व्यवस्था से बताना होगा कि टनों पैसे की आवश्यकता नहीं है या आपको इस प्रश्न का जवाब खोजना है कि यह पैसे कहाँ से आने है. कुछ अपवाद छोडकरम,देश का कोई नागरिक अपनी मेहनत के पैसे नेताओं या राजनीतिक दलों के लिए देने के लिए तैयार नही हो सकता है. ज्यादातर पैसे जिसके साथ चुनाव लड़े जा रहे हैं, राजनीतिक गतिविधियों का आयोजन और चुनाव अभियानों और आंदोलनों का आयोजन किया जा रहा है सबसे अधिक दूषित स्रोतों से आतें हैं. इससे पहले व्यापारिक घराने और उद्योगपति राजनीतिक दलों और चुनाव अभियानों के लिए

वित्त देते थे, लेकिन बहुत हद तक यह स्रोत धीरे-धीरे सूख गया है. अब वर्तमान संरचना में कम भुगतान है.

अब उद्योगपति या व्यापारी मंत्री के पास चला जाता है और कहता है कि वह क्या चाहता है और इसके लिए कीमत देता है और काम के आधार पर भुगतान करता है. अब कोई राजनीतिक दल और राजनीतिक अभियान अग्रिम में बहुत बड़े पैमाने पर उद्योगपति और व्यापारी द्वारा वित्त पोषित नही होता है. आज अपराध की दुनिया धन का मुख्य स्रोत प्रतीत होती है. जिस पैसे से चुनाव वित्त पोषित हो रहे हैं वह अपराध में शामिल व्यक्तियों से आता है, तस्करी, डकैती, अपहरण, अपहरण या इनमे किसी भी स्रोत से .सबसे अधिक पैसे अपराध की दुनिया से आते हैं. 15 साल पहले तक अपराधी को नेताओं को अपनी सुरक्षा के लिए पैसा देते थे, यानी जब वे मुसीबत में होते थे वे संसद के माननीय सदस्य के पास जाते थे और पहले किए भुगतान के बदले में अपने संरक्षण की माँग करते थे .बाद में इन लोगों को एहसास हुआ कि यह उनके पैसे, बाहुबल और उनकी निजी सेनाएं थे जो इन लोगों निर्वाचित करा रहे थे. तो उन्होंने सोचा कि हम उन्हें मदद क्यों देते हैं, अपने आप की मदद क्यों नही करते और परिणाम यह है कि आज लोकसभा के सदस्यों की एक बड़ी संख्या, श्री सोलंकी को पता होगा, आंकड़े 153 से 175 तक का उल्लेख कर रहे हैं, वे आपराधिक पृष्ठभूमि के व्यक्ति हैं. तो यह राजनीति के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण की पृष्ठभूमि है.

चुनाव जीतने में वही सबसे सक्षम हैं, जो चुनाव फंड कर रहे हैं, जिनके पास पैसे की शक्ति है और जो टिकट खरीदने की स्थिति में हैं. यह कहा जाता है कि लोक सभा और राज्य सभा के लिए भी कुछ पार्टी टिकट एकमुश्त नकद भुगतान द्वारा खरीदे जाते हैं. एक व्यक्ति ने पहली बार सीधे माना कि उसने पार्टी टिकट प्राप्त करने के लिए 5 करोड़ रुपए का भुगतान किया है. अब अगर आप पार्टी के टिकट प्राप्त करने

के लिए 5 करोड़ रुपए का भुगतान करते हैं और चुनाव जीतने के लिए और 5-10 करोड़ खर्च करते हैं और आपका निवेश 15 करोड़ रुपए है तो आप स्वाभाविक रूप से निवेश पर एक अच्छी वापसी की उम्मीद करते है. आपको यह 15 करोड़ वापस वसूल करने है और अगले चुनाव के लिए भी और 15 करोड़ चाहिए. इतना ही नहीं, आपको पार्टी मालिक के लिए भेजने के लिए भी कुछ करोड़ कमाने है. भ्रष्टाचार का स्रोत न केवल जन लोकपाल की कमी है बल्कि यह चुनाव में भी है. लोकपाल भ्रष्टाचार की समस्या को हल करने में सक्षम नहीं हो सकता है जब तक आप जड़ में प्रहार न करें और यह जड़ चुनावी प्रणाली है.

अब आपका बहुत समय न लेते हुए मैं बस कुछ बिंदुओं का उल्लेख करना चाहूँगा. एक यह है कि चुनावी प्रणाली है जो हमने अपनाई है (और यह संविधान में नहीं रखी गयी है, केवल सार्वभौमिक मताधिकार और चुनावों की निगरानी के लिए चुनाव आयोग का प्रावधान है) फर्स्ट पास्ट द पोस्ट (एफपीटीपी) प्रणाली बहुत विभाजनकारी है. अगर आप चुनाव लड़ने और जीतने की इच्छा करते हैं तो यह प्रणाली समाज को भागों में विभाजित करने की आवश्यकता पैदा करती है. यदि आप लोगों के पास जाते हैं और कहते हैं कि मैं भारतीय हूं आपको इस आधार पर कोई भी वोट नहीं मिलेगा. आप जाते हैं और कहते हैं कि मैं एक कुर्मी या जाट या वोक्कलिगा या त्यागी या कायस्थ या ब्राह्मण हूँ और इस आधार पर मैं अपनी जाति के लोगों के साथ संपर्क स्थापित करता हूँ और उन से जुड़ा हूँ तो इस प्रकार समाज विभाजित होता है. श्री ब्रह्मा बेहतर जानते हैं और जहाँ तक मैंने देखा है और आँकड़ों के साथ कहता हूं, अगर मुझे जाति के आधार पर या पैसे से 15 प्रतिशत वोट बैंक प्राप्त है या अगर लोग मुझसे माफिया के रूप में डरते हैं तो मेरी जीत की गारंटी 90 प्रतिशत है. अब अगर मैं 15 प्रतिशत की वोट बैंक होने से जीत सकता हूँ तो मैं आम आदमी या बाकी के 85 प्रतिशत के लिए परवाह क्यों करूँ? तो मेरे सारे प्रयास 15 प्रतिशत के

वोट बैंक का निर्माण करने के लिए होते हैं और यह समस्या चुनाव आयोग द्वारा हल नहीं की जा सकती क्योंकि यह प्रणालीगत है. यह समस्या हमारे द्वारा बड़ी संख्या मतदान के लिए बाहर आने से भी हल नहीं की जा सकती. तो प्रणालीगत समस्या को हल किया जाना है. इस संबंध में मेरा प्रस्ताव है कि हमें इस एफपीटीपी प्रणाली में परिवर्तन करना चाहिए. हमने इसे ब्रिटेन से लिया लेकिन हमने दो पार्टी प्रणाली नहीं ली. एफटीपीटी कुछ हद तक काम कर सकती है अगर आपके पास दो पार्टी प्रणाली है. अगर दो प्रमुख पार्टियाँ और दो उम्मीदवार है तो एक को बहुमत मिल जाएगा. हमने एफपीटीपी प्रणाली तो ली, लेकिन भारत में दो दलीय प्रणाली विकसित नहीं होने दी है. तो एक चुनावी प्रणाली और पार्टी प्रणाली के बीच एक काट है. एक लंबे समय से मेरा सुझाव है और संविधान आयोग ने भी इस पर ध्यान दिया है कि अगर आप सच में प्रतिनिधि चुनना चाहते हैं तो आपको यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कम से कम 50 प्रतिशत वोट पाने वाला ही विजेता हो. जब एक व्यक्ति को 50 प्रतिशत से अधिक एक वोट हो जाता हो, तभी वह निर्वाचित घोषित किया जाना चाहिए. यदि कोई भी 50 प्रतिशत से एक अधिक वोट नही पाता है तो अगली सुबह दोबारा चुनाव होना चाहिए. अब जब हमारे पास इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनें है तो यह तकनीकी रूप से संभव है कि उसी शाम में हर निर्वाचन क्षेत्र में परिणाम प्राप्त जाएं. तो यह तर्क कि फिर से चुनावों के लिए ताजा सुरक्षा व्यवस्था की आवश्यकता होती है या चुनाव महंगा हो जाएगा, सब व्यर्थ है. वैसे ही जैसे पुनर्मतदान होता है अगली सुबह कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में फिर से चुनाव हो सकता है और चुनाव को वोटों की सबसे बड़ी संख्या प्राप्त करने वाले पहले दो उम्मीदवारों तक सीमित किया जाना चाहिए. अगर ऐसा होता है तो एक को 50 प्रतिशत से अधिक वोट मिलेगा और आपके पास एक अधिक प्रतिनिधिक प्रणाली होगी. अभी लोक सभा के सभी सदस्यों में से 78 प्रतिशत में अल्पमत पर निर्वाचित हैं. जो जीता है उनमें से हर एक के

खिलाफ अधिक वोट डाल गये हैं. क्या हम उन्हें लोगों के प्रतिनिधि कह सकते हैं? क्या हम कह सकते हैं कि उन्हें हमने निर्वाचित किया है? हमने उनका चुनाव नहीं किया, हमने उनके खिलाफ मतदान किया, लेकिन वे फिर भी उनके 15 प्रतिशत वोट बैंक की वजह से जीत गये. तो प्रतिनिधियों की प्रतिनिधिक साख संदेहास्पद है. हमारी सरकार एक प्रतिनिधि सरकार नहीं है और हमारे प्रतिनिधि के लोगों के प्रतिनिधि नहीं हैं. तो इस मौलिक समस्या को हल करना होगा. मैंने सोचा कि मैं इसका उल्लेख करूँ क्योंकि यह पहले नहीं उठाया गया.

पेड न्यूज का उल्लेख किया गया था लेकिन हमारी एक और समस्या है पेड मतदाताओं की है. एक राज्य में मीडिया सेंटर के अध्ययन के अनुसार यह पाया गया कि 500 और 1000 के नोट वितरित किए गए. मतदाताओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया था. 20 प्रतिशत को एकमुश्त 500 रुपये नकद, 20 प्रतिशत को 1000 रुपये प्रत्येक और तीसरे 20 प्रतिशत को 1500 रूपये का भुगतान किया गया. तो हम न केवल मीडिया को भुगतान कर रहे हैं बल्कि हमने मतदाताओं को भी भुगतान किया है. तो हम सब भारत के नागरिकों के रूप में अपने वोट बेचने के लिए के उतने ही दोषी हैं जितना कि उम्मीदवार या और कोई.

अनिवार्य मतदान के पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है. चाहे यह संवैधानिक रूप से संभव हो सकता है क्योंकि मतदान के अधिकार में मतदान न करने का अधिकार भी शामिल है. क्या हम लोकतांत्रिक संविधान के तहत एक व्यक्ति को इस बात के लिए मजबूर कर सकते हैं? मेरा प्रस्ताव है कि मतदान अनिवार्य (ऑस्ट्रेलिया में, अमेरिका के कुछ राज्यों में और कुछ छोटे देशों में अनिवार्य है) बनाने की बजाय हमें मतदान को प्रत्येक नागरिक का संवैधानिक मौलिक कर्तव्य बना देना चाहिए. यह मौलिक कर्तव्यों के अध्याय के तहत शामिल किया जाना चाहिए. हर मतदाता को मतदान का एक प्रमाण पत्र दिया जाए. पासपोर्ट प्राप्त करने

के लिए, ड्राइविंग लाइसेंस प्राप्त करने के लिए, बीपीएल प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए, एक राशन कार्ड आदि प्राप्त करने के लिए मतदान प्रमाण पत्र दिखाना आवश्यक हो. जो लोग वोट करने के लिए नहीं जाते है, उनमें से एक बड़े वर्ग को विदेश यात्रा के लिए पासपोर्ट की जरूरत होती है. अब अगर पासपोर्ट के लिए पूछने से पहले उन्हें मतदान का प्रमाण पत्र दिखाना उनके लिए आवश्यक हो उन्हें मतदान के लिए तैयार किया जा सकता है. यदि आप ऐसा करते हैं तो मेरा अपना अनुमान है कि आसानी से 80 से 90 प्रतिशत मतदान होगा.

दूसरी बात वापस बुलाने का अधिकार है. यदि लोक सभा के 78 प्रतिशत सदस्य अल्पमत द्वारा चुने जाते हैं तो परिणाम घोषित होने की तारीख को ही वे सब वापस बुला लिए जाने चाहिए. वापस बुलाने की मोटे तौर पर दो प्रणालियाँ रही हैं. एक है कि वापस बुलाने के लिए 50 प्रतिशत से अधिक लोग वोट करें. अब लोकसभा क्षेत्र जहाँ 15, 20 या 30 लाख मतदाता हैं, आप उनमें से 50 प्रतिशत के एक याचिका पर हस्ताक्षर कैसे कराएंगे? यहां तक कि अगर यह संख्या 10 प्रतिशत है, आप इनके 10 प्रतिशत हस्ताक्षर कैसे एकत्रित कराएंगे यदि जनसंख्या 15-20 लाख से ऊपर है? फिर भी अगर आप उन्हें इकट्ठा कर भी लें तो आप कैसे सत्यापित करेंगे कि वे असली हैं? तो यह व्यावहारिक नहीं है. दूसरे, यदि आप 10 प्रतिशत का प्रावधान करते हैं तो आप को फैसला करना है कि क्या सदस्य वापस बुलाया जाना चाहिए, अगर जनमत में यह निर्णय लिया है कि वह सदस्य वापस बुलाया जाना चाहिए तो नए उम्मीदवार के चुनाव के लिए एक और चुनाव कराना होगा. तो आप इन विवरण में पाएंगे कि वापस बुलाने का ताजा सुझाव बहुत सतही है और यह हमारी स्थिति के अनुकूल नहीं है. आप शायद इसे संसद के स्तर पर नहीं बल्कि पंचायतों के स्तर पर लागू कर सकते हैं. दूसरा बहुत ताजा सुझाव नकारात्मक

मतदान या उपरोक्त में से कोई नही (नन ऑफ द अबव-None of the Above) के विकल्प के बारे में है. मैं कहता हूँ कि यह भी एक बहुत सतही सुझाव है, क्योंकि मतदान के लिए नही जाने वाले लोग ही नोटा के लिए कह रहे हैं. वे किसी के लिए भी मतदान नहीं करना चाहते और इसीलिए मतदान बूथ जाना नहीं चाहते. यह कहने के लिए मतदान बूथ पर जाना आवश्यक क्यों होना चाहिए कि हम वोट नहीं करना चाहते? यहां तक कि अगर कुछ लोग ऐसा करते हैं तो आप बहुमत की कल्पना कर सकते हैं जब बड़ी संख्या कह रही है कि वह किसी के लिए भी मतदान नहीं करना चाहती? मुझे लगता है कि यह भी एक व्यावहारिक सुझाव नहीं है. सभी चुनाव किसी को चुनने के लिए आयोजित किए जाते हैं न कि यह कहने के लिए कि हम किसी का चुनाव नहीं करना चाहते. यदि नोटा का तर्क हम सभी के द्वारा स्वीकार किया जाता है तो क्या परिणाम होगा? सरासर अराजकता क्योंकि कोई भी निर्वाचित नहीं होगा और कोई भी सरकार नहीं होगी. तो है कि यह भी एक बहुत ही सार्थक सुझाव नहीं है.

न्यायाधीश गुप्ता ने इस मुद्दे के बारे में बात की कि क्यों चुनाव याचिकाओं को अदालतों में स्थानांतरित कर दिया जो पहले चुनाव अधिकरणों में दायर की जाती थी. चुनाव अधिकरणों ने बहुत समय लिया और चुनाव अधिकरणों द्वारा फैसला दिया जाने के बाद मामले उच्च न्यायालय के पास गये और फिर उच्च न्यायालय में और 5 साल लग गए. तो उद्देश्य था कि यह समय कम किया जाना चाहिए.

सबसे महत्वपूर्ण सुधार राजनीतिक दल सुधार हैं. अभी राजनीतिक दल देश में एक ऐसी संस्था है जो कानून से परे हैं. विशेष रूप से राजनीतिक पार्टी को शासित करने के लिए कोई कानून नही है. चुनाव आयोग उन्हें रजिस्टर करता है और मान्यता देता है और उन्हें चुनाव प्रतीक आवंटित किए जाते हैं. बस इतना ही. राजनीतिक दलों के लिए कोई कानून नहीं हैं. आपके पास कंपनियों के लिए कानून है, आपके पास समाज

के लिए कानून है लेकिन दलों के लिए कोई कानून नहीं है. इसलिए वहाँ कोई पारदर्शिता नहीं है. यदि राजनीतिक पार्टी के लिए एक कानून बनाया जाता है तो इसमें पार्टी के भीतर लोकतंत्र के लिए प्रावधान करना चाहिए. इसमें राजनीतिक दलों, धन और व्यय के उनके स्रोतों की लेखा परीक्षा के लिए प्रावधान होना चाहिए. तो मुझे लगता है कि राजनीतिक पार्टी सुधारों और चुनाव सुधारों को एक साथ होना है. चुनाव आयोग भी इस में से कुछ के लिए दोषी है क्योंकि इसने सुप्रीम कोर्ट के समर्थन के साथ राजनीतिक दलों का पंजीकरण करने के लिए शक्ति तो हासिल कर ली लेकिन इसके पास उन्हें अमान्य करने की शक्ति नहीं है. कानून के एक छात्र के रूप में मुझे लगता है कि शक्ति रजिस्टर करने की शक्ति में डी-रजिस्टर और अमान्य करने की शक्ति शामिल हैं. 1348 रजिस्टर्ड पार्टियों में से 100 से भी कम पार्टियाँ चुनाव लड़ती है. तो चुनाव आयोग जानता है कि राजनीतिक दलों के पंजीकरण का प्रयोजनों धोखाधड़ी और काले धन को सफेद बनाना है.

इन शब्दों के साथ मैं प्रतिष्ठित वक्ताओं और हस्तक्षेपकों का शुक्रिया अदा करता हूँ और श्री मनोज अग्रवाल से सभी का शुक्रिया अदा करने का अनुरोध करता हूँ.

<u>मनोज अग्रवाल</u>

आदरणीय न्यायमूर्ति वीके गुप्ता, श्री ब्रह्मा, श्री सुभाष कश्यप और माननीय अतिथियों. उल्लेख करने के लिए कुछ बातें हैं. हमारी कोर टीम विघटनकारी और दलगत राजनीति से परे रहने के लिए प्रतिबद्ध है. जैसा कि न्यायाधीश गुप्ता ने कहा कि चुनाव सुधार लाने के केवल दो ही तरीके हो सकते हैं. पहला संविधान से इतर कुछ तरीके हैं. यह हमें तानाशाही की ओर ले जाएगा और इसलिए संभव नहीं है. राजनेताओं में से कोई संवैधानिक रूप से ऐसे सुधार लाने के लिए सहमत नहीं होगा. तीसरा तरीका है सार्वजनिक दबाव है. हमें सुधारों के लिए बहुत लोगों की जरूरत नहीं

है. हमें सिर्फ ऐसे सौ लोगों की जरूरत है जिन्होंने इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर काम किया है और इसे करने के लिए प्रतिबद्ध हैं. मेरा उन सभी व्यक्तियों और संगठनों से चुनाव सुधारों के क्षेत्र में काम करने के लिए एक मंच पर आने का विनम्र अनुरोध है. आप लोग ऐसे बड़े नाम हैं और आप अत्यधिक सम्मानित लोग हैं और अगर आप एक साथ आते हैं तो बहुत सी बातें संभव हैं. पीएफएन में हम मानते हैं कि हम अपनी खुद की एक संस्था बनाने की प्रक्रिया में नहीं हैं, हम बस चाहते हैं कि सभी एक तरह की सोच वाले लोग जो मानते हैं कि चुनाव सुधारों के माध्यम से अन्य सभी सुधार लाए जा सकते हैं इस उद्देश्य के लिए साथ आएं. सार्वजनिक दबाव तब बढ़ता है जब बुद्धिजीवी और युवा एक साथ आते है. तो यह आप सभी से मेरा एक मंच पर आने का विनम्र अनुरोध है और आइए देश के हित में काम करते हैं. जिस तरीके से भी आप चाहें हम आपकी मदद करने के लिए तैयार हैं.

आप सभी को यहां पधारने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद.

प्रथम कार्य-सत्र

प्रो. एम.पी. सिंह

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर परिचर्चा का आयोजन किया गया है और इस पैनल में बहुत से सम्मानित लोग उपस्थित हैं और मेरे लिए सम्मान की बात है कि मैं है भी इसका एक हिस्सा हूँ.

इस पैनल में हैं श्री के.जे. राव जी जिन्हें चुनाव प्रशासन में निपुणता के कारण कई महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां मिल चुकी हैं. २००५ के बिहार में हुए चुनावों में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही. इसके लिए बिहारवासी इनके कृतज्ञ हैं. इनके चुनाव प्रशासन कि दक्षता को देश-विदेश में बहुत सम्मान मिला है और बहुत महत्वपूर्ण दायित्व

मिले हैं. अफगानिस्तान, नॉर्वे, संयुक्त राष्ट्र, में भी आप काम कर चुके हैं. भारत के लिए साम्मान की बात है कि भारत के लोगों और निर्वाचन आयोग की दूसरे देशों के चुनावों में मदद ली जा रही है. भारतीय चुनाव आयोग दुनिया का एक मात्र ऐसा आयोग है जो संविधान के अंतर्गत स्थापित किया गया है, दूसरे लोकतन्त्र में चुनाव आयोग को संसद के कानून के तहत स्थापित किया गया है. यह हमारे संविधान निर्माताओं की सूझ बूझ का प्रतीक है.

पैनल में हमारे साथ पंकज शर्मा जी मौजूद है जो पत्रकार हैं, नवभारत टाइम्स से जुड़े रहे हैं, इन्होने चुनावों की रिपोर्टिंग की है, आल इंडिया रेडियो से भी जुड़े रहे हैं और दूरदर्शन के साथ भी कम कर रहे हैं. इस समय आप इंडियन नेशनल कांग्रेस के नेशनल सेक्रेटरी है.

हमारे साथ आर. राम. कृष्णा हैं जो सेवा निवृत नौकरशाह हैं और इस समय भाजपा के चुनाव प्रकोष्ठ के संयोजक हैं.

श्री विनय सहस्त्रबुद्धे जी रामभाऊ मालगिनी प्रबोधिनी नाम की एक संस्था चला रहे हैं. इनकी संस्था चुनाव सुधार के विषय में काम करती है. ये अनेक स्तंभ लिखते रहे हैं इसलिए मुझे लगता है कि इस विषय पर परिचर्चा के लिए यह उपयुक्त पैनल है.

मैं अभी अपना समय नहीं लूंगा पर यदि अंत में समय रहा तो मैं अपने विचार रखूँगा.

<u>केजे राव</u>

चुनाव सुधार के लिए यह बहुत जरूरी है कि हम सबको मिलकर काम करना पड़ेगा. हम सब लोग अलग-अलग होकर काम करते हैं जिससे हमारा विजन रोज का रोज दूर होता जा रहा है. जिस काम के लिए हम सोच विचार कर रहे है वो काम अब तक हो जाना चाहिए था इसलिए सभी संस्थाओं का एक होना बहुत जरूरी है. हम सभी

इतना प्रयास कर रहे हैं पर उसका नतीजा क्या निकलता है, हम बोलते हैं सब सुनते हैं और जाने के बाद सब भूल जाते है. फिर चुनाव के समय पर बताते है कि ये सब राजनीतिक पार्टियों ने किया है उससे क्या फायदा है.

जैसा कि आप लोगो को पता है कि भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, भारत में जो भी चुनाव होते हैं सबसे बढ़िया होते है परन्तु चुनाव आयोग भी अपनी लक्ष्मण रेखा पार नहीं कर सकता है. सबको लगता है कि अनुच्छेद 324 के तहत चुनाव आयोग को काफी शक्तियां मिली हुयी हैं. ऐसा सब लोगों का मानना है पर यह गलत है| इस सम्बन्ध में एम.एस. गिल कमीशन के मामले में सुप्रीम कोर्ट का फैसला महत्वपूर्ण है कि पहले तो सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि किसी भी मामले में इलेक्शन कमीशन को किसी के सामने हाथ जोड़कर सुझाव लेने की जरूरत नहीं है. खुद उस मैटर पर विचार करके निर्णय ले सकते है. लेकिन बाद में एक अन्य मामले में सप्रीम कोर्ट ने कह दिया कि इलेक्शन कमिशन एक्ट में कुछ नियम है उसको पार करके कुछ नहीं कर सकते हैं और उसके बीच में संवैधनिक एक्ट के अन्दर ही काम कर सकते हैं. इन नियमों को पार करके कोई भी कदम नहीं उठा सकते है.

स्वतंत्र चुनाव करना चुनाव आयोग की जिम्मेदारी है अगर संसद इस एक्ट को मजबूत करने के लिए और चुनाव सुधार के लिए कुछ नहीं कर रही है तो क्या किया जाये, यह बहुत बड़ा प्रश्न है. न्यायपालिका में इतने सारे मामले पेंडिंग है कि वो इसको सुनने-सुनाने के लिए तैयार नहीं हैं, सुप्रीम कोर्ट चाहे तो कुछ हो सकता है नहीं तो हम सबको फील्ड में जाकर कुछ करना होगा जोकि बहुत जरूरी हो गया है. लेकिन क्या करना है.

यह तय है कि यहाँ बातें करने से कुछ नहीं होने वाला है.

पहले कैसे होते थे नेता लोग. लोग उनसे मिलने जाते थे. न उनके बाएं कोई होता था न दायें. कोई नहीं होता था. आजकल के नेता लोगों को चारों तरफ बॉडीगार्ड चाहिए तभी लोगों के सामने आयेगा. मैं कहता हूँ सबसे पहले यह सेक्युरिटी हटानी चाहिए नेताओं की. जिस नेता को लोगों से डर है वह फिर लोगों का क्या कर सकता है उनको क्या बता सकता है.

हमारे चुनाव प्रक्रिया में राजनीति का आपराधीकरण सबसे ज्यादा हो चुका है. पहले नेताओं ने सहारा लिया अपराधियों का. फिर अपराधियों ने सोचा कि मैं क्यों इनको जिताऊं. मैं खुद ही क्यों न खड़ा हो जाऊं? और वह खुद खड़े होने लग गए. अब क़ानून तोड़ने वाले बन गए कानून बनाने वाले. कौन से पार्टी नहीं खड़े कर रही ऐसे उम्मीदवार बताइए मुझको?

इसलिए फील्ड में आकर काम करने की जरूरत है. भ्रष्टाचार सभी राज्यों में फैला हुआ है कहीं भी कुछ नहीं हो रहा है. यह सारे मामले समिति को सौंप देंगे. पहले ही कई मामले समिति के पास चले गए. उन्होंने कहा कि यह नहीं हो सकता.

बार बार यही सवाल है कि क्या करें, कैसे करें? आप ज्यादा से ज्यादा सुप्रीम कोर्ट जा सकते हैं. सुप्रीम कोर्ट के पास जाइये.

१९९८ से लेकर आजतक कितने पत्र लिखे गए, क़ानून मंत्री को लिखे गए, प्रधानमंत्री को लिखा गया. चुनाव सुधार के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री को लिखा गया लेकिन कोई रिजल्ट नहीं आया.

राईट तो रिजेक्ट की बात अभी चल रही थी अन्ना हजारे के टाइम में. वह पहले ही २००१ में मेरे द्वारा १० बार उस पर पत्र लिखा गया है कि उम्मीदवारों कि सूची में “इनमे से कोई नहीं” का विकल्प भी शामिल किया जाए. कुछ जवाब ही नहीं आता है. उसके लिए आन्दोलन भी किया है. फिर भी कुछ नतीजा निकला? सुप्रीम कोर्ट इस काम में फेलियर रहा है. हम सबको मिलके कुछ करना होगा.

सुप्रीम कोर्ट का कहना है कि राजनीतिक पार्टियां निर्णय ले पर पार्टियां कोई रूचि नहीं लेती इस विषय पर। आपराधीकरण सबसे प्रमुख कारण है, चुनाव आयोग को साफ सुथरा चुनाव संपन्न करने में. दूसरी चीज है चुनाव में आने वाली समस्याओं का सभी राजनीतिक पार्टियों को जानकारी है. कितनी बार उन्हें लिखा गया है पर कोई हल नहीं निकल पाया है इसीलिए अब हम आप जैसी संस्थाओं के पास आए है कि कुछ करिये इस दिशा में.

संसद में चर्चा तक नहीं होती हंगामा करके सब फेल कर देते है। हमारे पास भी कोई जवाब नहीं होते जब वोटर सवाल करतें है कि किसे वोट दें ये तो अपराधी हैं, पैसे वाले है और यही लोग चुनाव का सत्यानाश कर रहे है। यही दो पॉवर - मनी पॉवर और मसल पॉवर- इन दो चीजों में सुधार हो गया तो बाकी चीजें अपने आप सुधर जायेंगी. धीरे धीरे हम लोगों को लड़ना है इन चीजों से. यह बड़े मुद्दे हैं.

राजनीतिक पार्टियां करोड़ों रूपये इकट्ठे करती हैं. पूछो तो कहते हैं कि चंदे से मिल गया. डोनेशन से मिल गए. इसके लिए पारदर्शिता की जरूरत है. बिना स्वार्थ के कौन देगा इतनी बड़ी रकम चंदे में इसलिए सभी पार्टियों का खाता ऑनलाइन होना बहुत जरूरी है. हमेशा के लिए सिर्फ चुनाव के समय नहीं. पूरे कार्यकाल के दौरान. तब जाकर कुछ सुधर सकता है.

जिस पार्टी का एक भी प्रत्याशी न जीता हो उसका भी नामांकन होना चाहिए ऐसी एक चर्चा उठी थी, चुनाव आयोग के पास ये अधिकार है कि वो पार्टी को रजिस्टर करे या रद्द करे इस आधार पर कई पार्टियों को हमने रद्द किया, कई पार्टियों को उनके पते पर पत्र भेजा गया कई पत्र वापस आ गए. हमने कहा जब वहाँ कोई आदमी ही मौजूद नहीं है. चिट्ठी तक वापस आ गई हैं तो उनका नामाकंन क्यों हो. हमने उनका पंजीकरण रद्द कर दिया. लगभग 200 पार्टियां थी ऐसी जिनकी सदस्यता रद्द की गई. यह काम सुचारू रूप से चल नहीं पाया वरना कितनी पार्टियाँ रद्द हो जाती. आयोग

को शक्तियां इस्तेमाल करने से ही मिलेंगी. अंत में ये कहना चाहूँगा कि इस देश कि चुनाव प्रक्रिया को मजबूत बनाने और बेहतर भारत बनाने के लिए एक साथ मिलकर सहयोग करें.

<u>आर. रामकृष्ण</u>

मैं पिछले 15 सालों से चुनाव सुधार के लिए काम करता आया हूँ | कई मामलों में मैं चुनाव आयोग के खिलाफ लड़ा हूँ. जब हम चुनाव सुधार की बात करते हैं तो सबसे पहले यह सामने आता है कि चुनाव ही देश के वास्तविक राजनीतिक ढाँचे को दर्शाते हैं. मैं यह नहीं कहता कि यहाँ लोकतंत्र नहीं है पर मेरे हिसाब से सामंतवाद ने इस देश के लोकतांत्रिक ढाँचे को नुकसान पहुंचाया है. हर जगह एक तरह का सामंतवाद है.

आखिरकार राजनीतिक ढांचा वही होता है जो उस समय के सामाजिक आर्थिक माहौल में वहाँ के लोग चाहते हैं| आप में से ज्यादातर लोग आजादी के बाद के दौर से ताल्लुक रखते हैं पर मैंने ब्रिटिश राज के दौर में भी लोकतांत्रिक ढांचे को देखा है.

वैसे मैं मूलतः तमिलनाडु से हूँ. वहाँ मैंने एक गाँव देखा जिसमें ग्राम पंचायत के पंच ही गाँव की देख रेख करते थे और वह सभी गाववालों की पसंद हुआ करते थे. अंग्रेजों ने इस अवधारणा को देखा और तहसील, जिला जैसे ढाँचे बनाये. मैंने बिना किसी चुनाव प्रक्रिया के चुने गए जिला बोर्ड के गठन को देखा है | कुछ वकील, चिकित्सक, शिक्षक, और वो लोग जिन्होंने अपने अपने क्षेत्र में कुछ अच्छा किया हो, उन्हें मनोनीत किया जाता था. साथ ही सारे विद्यालय, अस्पताल उन ही के द्वारा चलाये जाते थे.

इसके बाद आजादी आई और हमने ऐसे लोकतांत्रिक ढाँचे को चुना जो ऊपर से नीचे की ओर थोपा जाए. मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इतने बड़े उपमहाद्वीप में हमें सीधे सीधे चयन (चुनाव) की क्या जरूरत है. बल्कि हमें एक ऐसी प्रणाली चाहिए जिसमें पंचायतों के पास बहुत शक्ति और पैसा हो. वे तहसील के और फिर जिले से सदस्यों को चुनें और फिर जाकर आखिर में विधानसभा के लिए सदस्य चुने जाएँ.

जब मैं राजस्थान में तैनात हुआ तो हमने पहली बार लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण की बात की. इसके तहत पंचायतों को आर्थिक ताकत के साथ अन्य शक्तियां देकर और मजबूत बनाया गया. सारे मसले- स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क निर्माण सब पंचायतों के अधीन आ गए. पर बाद में किसने उन्हें पतन की ओर पहुंचा दिया? हमारे विधायकों औए सांसदों ने, जिन्हें लगा कि इससे उनकी स्वायत्वता चली गयी है. मणिशंकर अय्यर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की बहुत बात करते हैं. पर जब हमारे दूसरे सांसद और विधायक ऐसा नहीं चाहेंगे तो हमें यह कैसे मिल सकता है.

मैं १९७० में जिलाधिकारी अलवर बना. उस समय सरकार ने खाद्यान्नों के व्यापार का काम शुरू किया. मुझे निर्देश मिले कि सरकार की इस योजना को सफल बनाया जाए.

एक बार मैं एक मंडी गया वहाँ मैंने देखा कि सरकारी फ़ूड कोरपोरेशन की दुकान पर कोई खरीददार मौजूद नहीं था. मैंने एक बुजुर्ग को बुलाया और उस से इसका कारण पूछा. मुझे आज तक याद है कि उसने अपना बहीखाता निकाला और फेंक दिया. उसने मुझे बताया कि निजी व्यापारी न सिर्फ अनाज बेचता है बल्कि उसके घर पर शादी या बीमारी या किसी अन्य हालत में भी मदद के लिए पहुँच जाता है पर निगम का दुकानदार ऐसा करेगा क्या. भले ही वह सस्ते दामों पर अनाज दे दे पर उसके बाद तो गयब हो जाएगा.

हम इंदिरा आवास योजना को देख रहे थे. मैंने पाया कि अनुसूचित जाति के लोगों को दूर-दराज के इलाकों में जमीन दी गयी थी. वहाँ न कुछ पानी था, न बिजली थी.

मछुआरों का एक गाँव था जिसमें उनके द्वारा चुनी हई पंचायत थी. जब मैं इस गाँव में गया तो मैंने देखा कि वहाँ गाँव के बुजुर्गो ने एक समिति बनायी और कहा कि हर एक व्यक्ति को अपनी आय का कुछ हिस्सा विकास कार्यों के लिए इस समिति को जमा कराना होगा. फिर किसी गली या किसी मोहल्ले में या कोई सडक निर्माण या अन्य कार्य होता था तो उसका खर्चा इसी जमा की हुई राशि से जाता था. तो हमें तय करना होगा कि हमें इस तरह का ढांचा चाहिए या तथाकथित लोकतंत्र चाहिए.

हमारे पास एक ऐसा लोकतंत्र है जिसमें चुने हुए उम्मीदवार को करीब तीस प्रतिशत ही वोट मिलते हैं. यानी सत्तर प्रतिशत लोगों ने उसके खिलाफ अपना मत डाला होता है. पर आदर्श प्रणाली यही हो सकती है जब कई उम्मीदवारों में से मतदाता नंबर एक और नंबर दो उमीदवारों को चुनें. इसके बाद फिर एक चुनाव हो जिसमें इन दोनों उम्मीदवारों में से किसी एक को आधे से ज्यादा मत मिलेंगे. यही एक सही व्यवस्था होगी वरना हम मौजूदा दौर में ऐसे लोगों को सदन में भेज रहे हैं जिनके पास लोगों का बहुमत ही नहीं है. अगर हमने इस व्यवस्था में बदलाव कर दिया तो हम कह सकते हैं कि कुछ काम हुआ है.

आज हमारे पास एक गैर-राजनैतिक और संवैधानिक चुनाव आयोग है. मैं पिछले १५ सालों से देख रहा हूँ कि यह संस्थान कई मुश्किल हालातों के बावजूद भी लोकतांत्रिक तरीके से चुनाव करा रही है पर वास्तव में चुनाव कराने का काम निर्वाचन अधिकारी करते हैं जो पूरी तरह किसी राज्य सरकार के अधीन होते हैं. रिटर्निंग ऑफिसर भी राज्य की सरकार या सत्ताधारी दल के एजेंट होते हैं.

चुनाव आयोग के लोग भी उनके काम में दखलंदाजी नहीं कर सकते. जब कृष्णमूर्ति चुनाव आयुक्त थे तो मैंने माकपा के नेताओं की रणनीति को उनके संज्ञान में लाया था. पुलिस भी उस समय पार्टी का ही सहयोग कर रही थी. सभी पुलिसकर्मी कॉमरेड थे. मैंने कृष्णमूर्ति को बताया कि उन्हें इन्हीं लोगों के जरिये चुनाव कराने पड़ेंगे. पर कृष्णमूर्ति ने कहा कि वह चुनाव कराने के लिए बंगाली भाषी कर्मचारियों को बाहर से बुला लेंगे.

आजकल चुनावों में कई पर्यवेक्षक बाहर के राज्यों से बुलाये जाते हैं. तो क्या रिटर्निंग ऑफिसर को नहीं बुलाया जा सकता? पर हमारे यहाँ ऐसी व्यवस्था नहीं है. हाल ही में उत्तर प्रदेश में हुए विधानसभा चुनावों में पांच जगहों पर रिटर्निंग ऑफिसरों ने पोस्टल बैलेट की गिनती तक नहीं की. मैंने यह मामला उठाया पर कुछ नहीं हुआ. तो फिर आखिर इस सबका समाधान क्या है?

आखिर चुनाव आयोग ऐसे मामलों में सुनवाई कर फैसला क्यों नहीं सुना सकता? हमें अदालत जाकर अगले १० सालों तक इन्तज़ार क्यों करना पड़े? जिस सुधार की हमें जरूरत है उसके

तहत चुनावी मामलों की सुनवाई और फैसले को चुनाव आयोग के अधीन लाया जाए. आप चाहें तो आयोग का विस्तार कर सकते हैं पर इसे विभिन्न स्तरों पर अदालत में जाने से बचायें.

<u>पंकज शर्मा</u>

अध्यक्ष जी मंच पर विराजमान मित्रों और सभी साथी. मैं दरअसल सुनने आया था. पर दो तीन बातें कहना चाहूँगा.

२७ साल तक नवभारत टाइम्स में पत्रकार रहा, चुनावी राजनीति बहुत कवर की, चुनावों पर, राजनीति पर लिखा भी बहुत. फिर मैंने कांग्रेस पार्टी ज्वाइन कर ली और आज कल इसका राष्ट्रीय सचिव हूँ. तो पहले बाहर से इसे देखा और अब इसका हिस्सा हूँ. ऐसा कहते हैं कि राजनीति में कोई भजन करने नहीं आता तो अपने लिए कुछ तैयारियां कर रहा हूँ.

राजनीति कितना मुश्किल विषय है. नेताओं को गाली दे देना उन का मजाक उड़ा लेना बड़ा आसान है लेकिन मै इतना जानता हूं कि राजनेता सामाजिक सरोकारों के लिए, चाहे किसी भी कारण से जितना चिंतित रहता है उतना समाज का कोई और वर्ग नहीं रहता है. कोई भी मामला हो मैंने तो नहीं देखा कि पत्रकार अपने मसले को छोड़ कर किसी सामाजिक मसले पर धरना देने बैठा हो, मैंने नहीं देखा कोई डॉक्टर अपने मसले को छोड़ कर किसी सामाजिक मसले पर धरना देने बैठा हो, मैंने सिर्फ राजनेता को देखा है चाहे किसी भी स्वार्थ के लिए लेकिन सामाजिक सरोकारों को लेकर जितनी चिंता उसे होती है उतनी मैंने किसी तबके में नहीं देखी अपने पूरे जीवन अनुभव में.

राव साहब ने दो तीन बातें उठाईं. वह पहले चुनाव आयोग में थे और चुनाव आयोग आज भी काम कर रहा है. एक तो मैं स्पष्ट कर दूँ कि मैं यहाँ जो भी कुछ कह रहा

हूँ वे पूरी तरह मेरे व्यक्तिगत विचार हैं और कांग्रेस पार्टी से उनका कोई लेना देना नहीं है . कहते हैं ना कि "रोटी का चक्कर है न बाबा ...वरना किस का घर है काबा!!"

बहुत सी बातें मैं कहूँगा तो जरूरी नहीं कि वे मेरे पार्टी का भी राजनैतिक विचार हो लेकिन मेरे व्यक्तिगत विचार हो सकते हैं. आप एक राजनेता की मुसीबत समझिए. हमारे देश में चुनाव आयोग है जिसने चुनाव से पहले चुनाव खर्च की एक सीमा तय कर दी है लेकिन राव साहब भी जानते हैं कि जितने भी उम्मीदवार हैं उनमें से करीब करीब सब लोग झूठा हिसाब देते हैं इसकी कोई चिंता नहीं है तो यह हिपोक्रेसी जब हमारी व्यवस्था में है कि हमको यह मालूम है कि यह हिसाब झूठा है फिर भी हम कुछ नहीं कर सकते.

जिस प्रक्रिया की जड़ में ही भ्रष्टाचार है उस प्रक्रिया से चुन कर आये लोगों पर इतनी हाय तौबा मचाने की जरूरत नहीं है. पिछले 20-25 सालों से मैंने चुनाव सुधार के मुद्दे पर चर्चा में बहस भी की है और हिस्सा भी लिया है और सुना भी है .
हरियाणा की एक छोटी सी कहानी है. एक बाप था उसके चार बेटे थे. रोज रसोई में बैठ कर खाना खाते थे. माँ रोटी बनाती जाती थी और बेटे और बाप खाते रहते थे. बाप गरीब था किसान था . वह रोज-रोज कहता था कि पशुओं के बाजार में जाऊँगा. एक भैंस लेकर आऊंगा. भैंस सुबह देगी २० किलो दूध और शाम को भी देगी दूध. तो रोज छक के दूध पीना और रोटियों पर घी लगाना और मट्ठा जो मिले वह गाँव में बाँट देना. जेब में जितने पैसे होते थे उसमे भैंस नहीं मिलती थी जितने पैसे में भैंस मिलती थी उतने पैसे नहीं होते थे. कई बार यही किस्सा हुआ न पैसे हुए ना भैंस आई.

पांचवी बार जब लौटा तो सब बैठकर खाना खा रहे थे तब तो कुछ जिक्र नहीं हुआ. तीन चार दिन बाद बेटों को लगा कुछ गायब सा है. थोड़े दिन बाद याद आया कि बापू इन दिनों भैसों की बात ही नहीं कर रहा पिछले चार दिनो से. बेटे ने कहा - क्यों रे बापू तू जो भैस ला रहा था सो के हुआ? बाप ने कहा क्यूँ शर्मिंदा करते हो. समझते हो तुम. न पैसे हैं न भैंस आ पाई है .
तो बेटों ने कहा कि बापू तू भैंस लाये चाहे न लिया पर बात करता रह कर दिल लगा रहवे!!

तो ये जो लोकत्रंत्र की भैंस आज लट्ठमारों के हाथ में पड़ गयी है उनसे छुडाने के लिए हम आज रोज चर्चा करते हैं यही बहुत सुखद है. कम से कम ऐसे लोकतंत्र में रहते हैं जहां ऐसी चर्चा करने का मौका मिलता है. आज इस पत्र में पड़ रहा था पेड न्यूज का जिक्र है.

15 साल पहले जब मैं अखबार में काम करता था तो वहाँ के मालिक का बेटा अमेरिका से पढकर आया. अमेरिका से जो आता है वह कुछ न कुछ नई विद्या सीखकर आता है और उस पर अमल भी करता है. जब वह आया तो उसने मीडिया में नया प्रयोग किया.

हम लोगों की पूरी पीढ़ी गांधी जी के किस्से सुनकर , नेहरु जी के किस्से सुनकर प्रेरित होते थी हम राजनेताओं को आइकॉन समझते थे या लेखक होते थे, संगीतकार होते थे, पत्रकार होते थे, हम लोगों के जामाने में धीरुभाई अम्बानी आइकन नहीं होते थे. हो सकता है बहुत लोगों ने बनाया भी होगा.

तो हम लोगों से कहा गया कि पहले पन्ने पर राजनीति कि ख़बरें क्यूँ छाप रहे हो. पहले पन्ने पर राजनीति कि ख़बरें छपेंगी केवल दो. बाकी थोड़ा हल्का फुल्का - राखी सावंत या खेल छापो फिल्म छापो. ऐसे करके राजनीति को हमने अपनी बुनियादी चिंताओं के हाशिए पर डालने का काम शुरू किया है.

आज का जो मीडिया है . चाहे वह प्रिंट मीडिया हो चाहे इलेक्ट्रोनिक मीडिया हो. आप लोग जो देखते हो. आप लोग देखते हो उदासी. राजनीति सब बर्बाद कर रही है. एक अवधारणा है बाजारवाद की कि राजनेता और रोकटोक देश को बर्बाद करते हैं. फिर हमने संसद पर सवाल खड़े करना शुरू कर दिए. हमने स्तंभों पर सवाल खड़े करने शुरू कर दिया . जैसा राव साहब ने कहा कि हमने राजनेताओं को घृणा का एक प्रतीक बना लिया है. चुनाव सुधार तो एक बहुत छोटा हिस्सा है व्यवस्था परिवर्तन का. दरसल हमें व्यवस्था में सुधार चाहिए. राजनीति में सुधार चाहिए और चुनावों में सुधार चाहिए. अगर एक लोकतंत्र रहेगा तो राजनैतिक दल रहेंगे. राजनैतिक दल रहेंगे तो नेता रहेंगे लेकिन अच्छे लोगों को आगे लेकर हमारा समाज क्यूँ नहीं बदल सकता मैं यह जानना चाहता हूँ. आज हम लोग एक विकल्पहीन लोकतंत्र में रहते हैं अगर मेरी पार्टी मुझे कहीं से चुनाव लडवाना भी चाहे तो उसमे जो पैसा खर्च होगा 5 करोड़ 10 करोड़ और मैंने तो सुना है कि दक्षिण भारत में २५ करोड़ तक का खर्च हुआ है तो वह रकम कहाँ से आएगी यानी अच्छा आदमी चुनाव लड़ ही नहीं सकता. क्यूंकि हमारी चुनाव प्रक्रिया ही ऐसी है और इसमें जरूर सुधार होना चाहिए .

विनय सहस्त्रबुद्धे

आदरणीय अध्यक्ष जी. इस पैनल में बैठे सभी लोग और यहाँ उपस्थित श्रोता. मैं धन्यवाद देना चाहूँगा मुझे बुलाने के लिए और मेरा आग्रह स्वीकार करने के लिए. मैं सबका सुनके ही जाऊँगा. मै सिर्फ 2 या 3 बिन्दुओं पर प्रकाश डालूँगा.

सबसे पहले मै इस बात को स्पष्ट करूँगा कि पिछले दो या तीन वर्षों से जो चरम सीमा पर पहुँच गया है वह है जनता के अंदर राजनीतिक वर्ग के प्रति तिरस्कार और घृणा. उनके प्रति एक क्रोध की भावना का ज्वार दिखाई देता है उसको ही मैं पहले स्पष्ट करूँगा. दूसरा, उस पर जो चिंताए बनी हुई है उस पर चर्चा करूँगा.

दूसरा कुल मिलाकर हमारे निर्वाचन और निर्विचित प्रतिनिधि, जो निर्वाचन प्रक्रिया के कारण बने है जहाँ-जहाँ भी हो ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक और उसकी उत्पादकता पर चर्चा करूँगा जो मुझे लगता है कि जनतांत्रिक व्यवस्था का सबसे बड़ा हिस्सा है.

यहाँ पर विषय चुनाव सुधार है. सबसे पहले मुझे लगता है कि लोकतंत्र मरा नहीं है इसलिए जीवित रहेगा ये मानना बड़ा भोलेपन है. जनतंत्र जीवित रह सकता है पर जीवित रहते हुए भी निष्प्राण बन सकता है. यह हमारी उम्मीद के विपरीत है और हमें चाहिए कि जो यह निष्क्रिय पड़ा हुआ है उसके अन्दर प्राण डालना बहुत जरूरी हो गया है जिससे इसे फिर से पुनः स्थापित किया जा सके. इसकी शुरूआत जनता के द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधि ओर इसके लिए कड़ी बने हुए राजनीतिक दल के आपसी सरोकार से होती है.

राजनीतिक पार्टी या कार्यकर्ता के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना लोकतंत्र में बड़ी चिंता का विषय है, राजनेतिक दलों और और राजनेता के प्रति गुस्सा एक स्वस्थ जनतंत्र का प्रतीक नहीं. महाराष्ट्र में एक लोक कहावत है कि भगवान ने एक दिन एक इन्सान बनाया और उसमें दिमाग डालना भूल गए तो उनके एक सहयोगी ने पूछा कि इसको कहाँ स्थापित करेंगे तो उन्होंने कहा कि इसे राजनीति में डाल दो यही उसके लिए सबसे सही जगह है, वहाँ कोई भी दिमाग के बिना काम कर सकता हैं.

ये जो एक भावना बनी हुइ दिखाई देती है ये मुझे बहुत चिंताजनक लगती है और जनता के दिल में यह भावना है तो मुझे लगता है कि इस भावना को उकसाने वालों को तो सोचना चाहिए और साथ ही हुयी राजनीतिक दलों को भी इस बारे में सोचना चाहिए.

इसका कारण क्या है. कारण कई हैं. इस पर चर्चा हुयी राजनीतिक दलों के बारे में चर्चा हुयी. राजनीतिक दलों का संस्थागत रूप से काम न करना भी एक कारण है.

मीडिया पर कई सवाल हैं. न्यायपालिका संतोषजनक नहीं है. सेना भी अब सवालों के गहरे बादल में आ रही है. संसद और वहाँ चुने गए लोग- कम से कम पिछले एक दशक में लोगों द्वारा सम्मान से नहीं देखा जा रहा. इसीलिए मुझे लगता है कि अब समय आया है जब जितने भी जनतांत्रिक संस्थान हैं जो ये जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि है जो पार्टियां है या हमारा लोकतंत्र है व्यवस्था है चाहे वो संसद हो या विधान मंडल हो या नगर पालिका हो सबकी उत्पादकता को चुस्त-दुरस्त करना बहुत जरूरी है.

मै कई बार परेशान हो जाता हूं कि राजनैतिक शास्त्र के एक छात्र के रूप में अगर संसद को वही पिछले 60 सालों से घिसे पिटे तरीके से चालने वाले हैं हैं तो मुझे

लगता है कि अब समय आया है जब नए विषयों पर ध्यान दें. अभी दिल्ली महानगर पालिका के चुनाव हुए. उस से पहले मुंबई में हुए अब उत्तर प्रदेश में भी होंगे. मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि 2012, 2007, 2002 और 1997 के इन चुनावों के समय जो मीडिया में, समाचार पत्रों में या समाज के प्रबुद्ध वर्गों में जिन विषयों पर चर्चाएँ थीं सारे मुद्दे और चर्चा के बिंदु वहीं के वहीं रहे. किसी में कोई बदलाव नहीं आया.

झुग्गी झोपड़पट्टी का प्रश्न वहीं है. नागरिक सुविधाओं का प्रश्न वहीं है. परिवहन से जुड़ी समस्या वहीं हैं. समस्याएं हल न हो और जनतंत्र चलता रहे तो यह किसी के लिए भी जनतंत्र के प्रति मोह रखने लायक स्थिति नहीं है और इसके लिए हम सब जिम्मेदार हैं कि जिस तरह के जन प्रतिनिधि हम चुनते है या उस प्रक्रिया में सहभागी होते है या इस से मुकरते है इसलिए हम जिम्मेदार हैं और इसलिए सारी व्यवस्थाओं पर एक बार पुनः प्रकाश डालने की जरूरत है.

अगर सवाल का जवाब नहीं मिले तो चाहिए कि इसके लिए संसद साल में तीन बार नहीं दस बार चलनी चाहिए. अगर समस्या हल नहीं हुई तो संसद चलाओ. प्रतिनिधियों को अधिक वेतन देना चाहिए. लेकिन बदले में काम भी लो.

साथ ही हर महीने उनसे रिपोर्ट लो कि क्या क्या काम किया अैर क्या क्या बाकी है. पहले कुछ राजनैतिक दल ऐसे करते थे कि अपने जनप्रतिनिधियों से कहते थे कि वो रिपोर्ट दें कि क्या काम किया है पर अब इसमें कमी आ रही है. मैं मानता हूँ कि इसको पुनर्जीवित करना चाहिये.

समय बहुत कम है पर मुझे लगता है कि इन बातों को छुए बगैर हम चुनावी प्रक्रिया को सुधारने की बात को आगे नहीं बढ़ा सकते. चुनाव प्रक्रिया बहुत मूल प्रक्रिया है पर

केवल चुनावी प्रक्रिया सुधरने से सारी राजनीतिक प्रक्रिया सुधरेगी ऐसा मै नहीं मानता.

इसलिए मैं पुनः उस ही बात पर आऊंगा कि चुनाव प्रक्रिया में सुधार की अहम जरूरत है और पर हमारी राजनीतिक प्रणाली में भी सुधार की आवश्यकता है.

जिन लोगों को हम चुनकर भेजते हैं उनसे हमारा कोई रिश्ता ही नहीं है . हमे नहीं लगता कि वह हमारे प्रतिनिधि हैं. ये जो अवस्था बन गयी है यह चिंता का कारण है.

एडमंड बर्क ने ब्रिस्टल में करीब २५० साल पहले १७७४ में कहा था कि एक जनप्रतिनिधि का उद्देश्य न सिर्फ जनरंजन करना है बल्कि अपना निर्णय क्रियान्वित करना है. आज जब एक लोकरंजन का दौर चल रहा है उस दौर में इस तरह के विचार हमारे लिए सहायक होंगे.

प्रश्न: स्विस बैंक ने कहा है कि भारतीय सरकार कोई डिटेल मांगे तो सही काले धन के सम्बन्ध में तब दी जायेगी लेकिन ऐसा क्यों नहीं क्या गया है अभी तक सरकार द्वारा ?

पंकज शर्मा: ये मान लेना कि विदेशों में जमा पैसा वापस लेने के सम्बन्ध में सरकार कुछ नहीं कर रही है गलत है। सरकार ने इस सम्बन्ध में लिख है और उसे जवाब भी मिला हे। कुछ लोगों का नाम भी सामने आया है. जनलोक पाल के सम्बन्ध में कहना चाहता हूँ कि भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई कुछ चन्द लोगों के ठेकेदारी नहीं और राजनीति के पेश में सभी भ्रष्ट है ये मान लेना लोकतंत्र के साथ बहुत बड़ा अन्याय है.

प्रश्न- हिंदुस्तान की कोई राजनीति दल ऐसा नहीं है जो कि पूरी तरह से डेमोक्रेटिक हो क्या ये विडंबना नहीं।

के.जे. राव: इस बात से सहमत हूँ, इनर डेमोक्रेसी के लिए प्रयास किये गए परन्तु सफलता अब तक नही मिल पायी है. पार्टी के वरिष्ठ नेता इसके लिए जिम्मेदार है.

प्र. - चुनाव प्रचार के लिए फेसबुक और मोबाइल एसएमएस पर रोक नहीं लगी जबकि गरीब तबके के ढोल-बाजों पर रोक है क्या यह सही है?

उ.- मै इससे सहमत नहीं हूँ क्योंकि आज मोबाइल हर तबके के लोगों के आवश्यकता की वस्तु बन चुकी है हर किसी के पास है मोबाइल नौकर से लेकर मालिक तक सबके पास है। परन्तु यह तरीका खर्चीला है.

द्वितीय कार्यसत्र

रवीश कुमार

हम सब उम्मीद करते है कि चुनाव के दौरान मीडिया तटस्थ रहे और एक स्वस्थ जनमत का निर्माण हो सके. मै अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि तटस्थता कि तो बली चढ़ गयी है. आइ.बी. मिनिस्ट्री जो कि मीडिया पर कंट्रोल रखती थी अब उसका कोई रोल नहीं रह गया है. अब तो राजनीतिक पार्टियों का मीडिया सेल ही कंट्रोलर है वहीं से सारा काम हो जाता है। पहले कुछ प्रमुख नेशनल पार्टियाँ इस काम में निपुण थी पर अब तो हर पार्टी का तटस्थ मीडिया सेल है. ये कहना चाहता हूँ कि जहाँ तटस्थता विचारधारा की कसौटी पर जा रही हो तो वहां एक बड़ी समस्या बन जाती है | मैं बताना चाहूँगा कि चुनाव के दौरान कई तरह के मीडिया होती है. सत्ता पार्टी की मीडिया, सोशल मीडिया, मेन स्ट्रीम मीडिया, रीजनल

मीडिया, नेशनल मीडिया, और सभी राजनीतिक दलों की अपनी मीडिया है. इन सबकी पूरी कोशिश होती है कि मीडिया की वास्तविक तटस्थता को किस प्रकार मारा जाये अब राजनीतिक पार्टियां मीडिया के लिए चुनाव के दौरान एक कस्टमर है. अब पार्टियां अपना विज्ञापन लेकर आते है, पेड न्यूज का भी एक सिस्टम बन चुका है. मीडिया का अब काम क्या है वो बताता हूं. अब बयान ही सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण मुद्दा है जो बयान अस्तित्व में नही है वो मुद्दा नहीं है, बयानों से बयानों को टकरा दीजिये और हंगामा मचा दीजिये.

जनमत का निर्माण कैसे हो ये फैसला हम सबको करना होगा. मीडिया की जो पेशागत जिम्मेदारी होनी चाहिए वो तो मुझको अब बिल्कुल दिखाई नहीं देती कि हम जनमत के निर्माण में कोई सक्रिय भूमिका निभा रहे है इसीलिए भारत का लोकतंत्र कभी स्वस्थ नजर नहीं आता है. हर चुनाव में मीडिया सिर्फ पुरानी खबरों या नतीजों को नए पैटर्न में पेश करती है जबकि 1970 के चुनाव और 2012 के चुनाव परिणामों का कोई सम्बन्ध नहीं है किसी भी दशा में इसके साथ अब किसी सामाजिक मुद्दे के बात नहीं छपती चुनाव के दौरान बल्कि उसके कही ज्यादा प्रमुखता से छपता है कि प्रत्याशी के पास कितनी सम्पत्ति कहां से आयी वो कितना भ्रष्ट है. अगर ऐसा मुद्दा होता भी है तो मीडिया इसे ऐसे अनसुलझे सवालों के साथ पेश नहीं करता है कि लोग उलझ कर इस पर चर्चा ही बंद कर देते है. ऐसे में जनमत का निर्माण संभव नहीं है.

चुनावी सुधार में मीडिया कि क्या भूमिका है आपको यह बिल्कुल साफ साफ नज़र आएगा. आप हताशा में यह कह सकते हैं यह चोरी कर रहा है , दलाली कर रहा है. यह सब कुछ नहीं है यह प्रोपर बिजनेस होता है. अब इसको धंधे के स्तर पर और अधिक औपचारिकता के साथ किया जाने लगा है. एक तो पार्टी अपने स्तर पर पैसा

खर्च कर रही हैं और जो उम्मीदवार बना है वह भी स्थानीय स्तर पर पत्रकारों को पैसा बाँट रहा है. मैं एक ऐसे पत्रकार को जानता हूँ जिसे एक बड़ी पार्टी के नेता ने कहा कि यह छाप दीजिए. उसने तैश में आकर कहा कि नहीं छापूंगा और यह पैसा क्यूँ दिया. फिर उसका ट्रांसफर ऐसी जगह पर हो गया कि वह साल भर रोता रहा. फिर उसे बहुत बाद में पता चला कि हमारा जो सिस्टम है वह इसका पार्ट हो गया है. वह बाद में बोला कि हमें क्या दिक्कत थी हम तो छाप देते अगर मालूम होता तो. उसने तो ऐसा इसलिए किया क्योंकि उसे लगा कि संपादक खुश हो जाएगा पर जैसे ही संपादक को मालूम हुआ उसने उसे फोन किया और अगले दिन उसका ट्रांसफर हो गया.

चाहे कोई भी राजनीतिक दल हो वह चाहे पक्ष में हो या विपक्ष में वो नहीं चाहते हैं कि मीडिया स्वतंत्र रहे और उससे कही ज्यादा मीडिया भी नहीं चाहती है कि वो जरूरत से ज्यादा स्वतंत्र हो. क्योंकि उसका मूल काम जो है धंधा करना है ओर यह बिजनेस तभी होगा जब वह आपसे या आपके विरोधी दल से कहीं न कहीं किसी स्तर पर सांठ-गांठ बिठाए. तो इसमें अभी भी रिफॉर्म की जगह है. मैं यह नही कह रहा हूँ कि अन्धकार युग आ गया है. एक लोकल पत्रिका में निकला ही है इस बार “नितीश कुमार : एडिटर इन चीफ ऑफ बिहार”. उस ही मीडिया में यह आ रहा है कि काटजू कह रहे हैं बिहार में मीडिया जो है वह एक तरह से गुलाम की तरह है .

जनमत के निर्माण में अगर चुनाव सुधार जैसी कोई चीज है तो मुझे लगता है कि उसके हिस्से में मीडिया की भूमिका को भी सामने लाना चाहिए. मैं कल ही अमेरिका की एक प्रतिष्ठित वेबसाईट पर पढ़ रहा था कि वहाँ अभी अमेरिका में एक बात चल रही है कि जो भी पॉलीटिकल पार्टी किसी भी न्यूज चैनल को विज्ञापन देती है तो

उस चैनल से उम्मीद की जाती है कि वह सारी जानकारी कि किस पार्टी ने कितने का विज्ञापन दिया है उसको अपनी वेबसाइट पर दिखाए और सब बता दे. सारे बड़े बड़े चैनलों के मैनेजर वहाँ के एक आयोग के पास पहुंच गए हैं और लॉबिंग कर रहे हैं बाकायदा. उनकी दलील यह है कि हमारा रेट जो है वह लोगों के सामने आ जाएगा.

इस तरह की चीज़ों से चुनाव सुधार में मीडिया को भी लाया जा सकता है. अगर मीडिया में राजनीतिक दलों को कोई विज्ञापन न चले क्या हम इस तरह के लिए तैयार हैं. जैसे कि मीडिया में किसी भी राजनीतिक दल का विज्ञापन न चले और अगर कोई चलाता भी है तो इसकी जाँच होनी चाहिए कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उस चैनल ने सिर्फ उसी पार्टी कि तारीफ की है.

हर राजनैतिक पार्टी का अपना मीडिया सेल है तो वह कहीं और विज्ञापन दे या फिर ये सुनिश्चित किया जाये कि अगर किसी चैनल को एक पार्टी का विज्ञापन बढ़ता जा रहा है तो कहीं वो मीडिया हाउस उस पार्टी को कोई फायदा तो नहीं पहुंचा रही है या सिर्फ उसी पार्टी के पक्ष में कोई रिर्पोटिंग की है इसकी जांच होनी चाहिए. क्या इस तटस्थता के लिए हम तैयार है ?

ऐसे तो एक तरह से हम जनमत के नाम पर धोखा कर रहे हैं. पूरा उसको एक आर्टिफिसियल तरीके से क्राफ्ट किया जा रहा है. न्यूज़ 'मेन्यूफेक्चर' किया जा रहा है और आप देखेंगे कि अब कोई स्पेस भी नहीं बचा है. फिल्म स्टार का कवरेज हो रहा है . मायावती की रैली का कवरेज नहीं होता ठीक से, आडवाणी की सभा का 10 सेकन्ड का होता है. अभी तो यह साबित भी नहीं हुआ ठीक से किसी हीरोइन के आने से कोई उम्मीदवार जीत जाता है या हार जाता है. हर चुनाव का यही हाल है. यह जो

एक तरह से स्पेस को 'किल' कर रहे हैं. उसे भर रहे हैं कचरे से. वो जनमत के निर्माण के लिए नहीं है. अगर स्वस्थ और जागरूक जनमत का निर्माण हो जाएगा तो यकीन मानिए कि वह राजनीतिक दलों के नेतृत्व के बाहर की चीज हो जाएगा. तब सभी राजनीतिक दलों को इस से दिक्कत होने लगेगी जो आजकल सोशल मीडिया की अति सक्रियता से भी हो रही है .

इसमें सभी व्यक्तिगत स्तर से लेकर पार्टी के स्तर तक भागीदार होते जा रहे हैं. अगर किसी की बारी नहीं आई है तो वह बचा हुआ है. पर उसकी परीक्षा तब होगी जब उसकी बारी आएगी. तब वह किस तरह से बदलाव करता है. किस तरह से आजादी के साथ खड़ा होता है. सवालों के साथ खड़ा होता है. यह पूरा सिस्टम ऐसा है कि मेले के हंगामे में जो जीत जाए. जिसके हाथ में मछली आ जाये. वो लेकर भाग जाए और यही मीडिया भी चाह रहा है.

हम अपने स्पेस के लिए कहाँ लड़ाई लड़ रहे हैं. हम कहाँ लड़ रहे हैं. कभी आपने सुना है किसी से सिस्टम को लड़ते हुए. जिस पत्रकार को दो रूपये की औकात नहीं. वही बोलता चला आ रहा है. कभी आपने सिस्टम चलाने वालों से सुना है कि उनके स्पेस को कोई हथियाने की कोशिश कर रहा है. उस पर अतिक्रमण कर रहा है. ऐसा क्यों होता है कि बिहार में आप स्वतंत्रता के साथ काम नहीं कर सकते हैं. ऐसा क्यों होता है कि आप मायावती की रैली नहीं कर सकते हैं. ऐसा क्यों होता है कि जब छत्तीसगढ़ में अजीत जोगी हारे तो उस ही रात आकाश या प्रकाश चैनल अपना सारा सामान लेकर भाग गया. यह अब लोगों को ठगने का उपकरण बनता चला जा रहा है. इस में अब सवाल कौन उठाएगा. आम लोग कर रहे हैं सोशल मीडिया पर लेकिन जो सिस्टम के जो स्टेक होल्डर हैं. जो पार्टियां हैं वह इसको नहीं करना चाहती हैं. इस नव उदारवादी व्यवस्था में सुकून तभी मिल सकता है जब सबके हाथ एक दूसरे से मिले

हों. और सबके मिले हुए हैं. सबके पास विज्ञापन आ रहा है .वह विज्ञापन सरकार के द्वारा नियंत्रित होता है उसमे किसी तरह की कोई पारदर्शिता नहीं है. आप अम्बेडकर को इंच भर का दर्जा दे या न दे पर उनकी तस्वीर छापकर अखबारों की करोड़ों की कमाई हो जाती है. क्यों देना चाहिए अम्बेडकर का विज्ञापन. कभी किसी दलित नेता ने यह सवाल किया कि क्यों उनके नाम पर विज्ञापन छापें? मत छापिए. जब मीडिया को अम्बेडकर के बारे में नहीं पता तो अम्बेडकर के नाम पर यह विज्ञापन देने की सरकार की यह नैतिक जिम्मेदारी क्यों होनी चाहिए.

मीडिया अपने स्वार्थ और मतलब के लिए सारी वहीं चीजें दिखाती है जिससे कि समाज का कोई भला नहीं होने वाला है इसलिए अगर चुनाव की प्रक्रिया को सुधारना है तो जन प्रतिनिधियों के आचरण के साथ मीडिया की भूमिका को सवाल के दायरे में नहीं लायेंगे तो मुझे नहीं लगता कि बहुत ज्यादा हासिल कर पाएंगे. आप अच्छे उम्मेदवार हो सकते हैं हम कवर ही नहीं करने जा रहे हैं. एक या दो उम्मीदवारों को - एक काँग्रेस को कवर कीजिये एक भाजपा का कर लीजिए या ज्यादा से ज्यादा समाजवादी पार्टी भी कवर कर लीजिए. यही निष्पक्षता है. जितनी नयी पार्टियां हैं या लोकतांत्रिक तरीके से कोई नयी आवाज़ बनने की कोशिश करता है तो उसका माखौल उड़ाते रहिये. यह हमारा काम हो गया है. वो पागल है, दलाल है, जो पहले से स्थापित पार्टियां हैं उनकी दलाली के बारे में कोई नहीं कहता.

मैं अब राजनीतिक रिपोर्टिंग देखता हूँ तो मेरा तो मन भी नहीं करता. मुझे नहीं लगता है कि उस से कोई मेरी जानकारी में वृद्धि हो रही है या मेरी सोच को विस्तार मिल रहा है. उम्मीदवार तक के बारे में भी ठीक से नहीं बताते. यह उम्मीदवार ऐसा है, यह आगे जाकर राजनीति का चेहरा बन सकता है. एक सेट पैटर्न को रीसाइकल करते रहते हैं बस बार बार. इसलिए आप अगर किसी अखाबर के पन्ने को देखें या

टेलीविजन की चर्चा को देखें तो आपको एक तरह से ऊब होने लगती है. इसमें आप भी कहते हैं कि बात ऐसी हो जिस से कुछ ऊर्जा निकले जिससे आप भी टकराएं. लेकिन यह ऐसी व्यवस्था बनाने में हम सब शामिल हो जाएँ और वह व्यवस्था हम सबको एक सड़े हुए नागरिक के रूप में बदल दे और अगर यह स्वीकार है राजनीतिक दलों को, मीडिया को और हमारे सिस्टम को तो फिर हम क्या कर सकते हैं. ऐसे ही सेमिनारों में हम अपनी आवाज उठाते रहेंगे.

प्रश्न: रवीश जी आपने मीडिया की विषमताओं को तो सामने लाया पर कोई समाधान नहीं बताया?

उत्तर: समाधान क्या है. जब भी कोई समाधान की बात की जाती है तो कोई करना नहीं चाहता.

प्रश्न: रवीश, आपको क्या लगता है कि भारत को दिवालिया करने में मीडिया का क्या योगदान है ?

उत्तर: बहुत सकारात्मक योगदान है.

<u>एसएन शुक्ल</u>

अध्यक्ष जी, देवियों और सज्जनों. मैं अब राजनीति में अपराधीकरण को रोकने के लिए क्या प्रयास किये जाने चाहिए इस बारे में अपनी संस्था के विचार आपके समक्ष रखूंगा.

इस सन्दर्भ में संविधान सभा में डाक्टर राजेंद्र प्रसाद ने अंतिम भाषण में कहा था कि हमारे जन प्रतिनिधि में दो चीजें होनी चाहिए एक तो चरित्र और दूसरा ईमानदारी लेकिन आज बहुत ज्यादा जन प्रतिनिधि ऐसे है जिनमें ये दोनों बहुत कम है हमारे संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि जिससे सुनिश्चित हो सके कि भविष्य में केवल ऐसे ही लोगों को चुना जाए जिसमे चरित्र हो और ईमानदारी हो और इसका

कारण यह था कि जो संविधान निर्माता थे वो पके पकाए लोग थे. वो त्याग करके, बलिदान करके आये थे और राष्ट्र प्रेम की भावना से प्रेरित थे और शायद उन्होंने ऐसा सोचा ही नहीं था कि उनके बाद लोग ऐसा भी कर सकते है इसलिए उन्होंने ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की .

उस समय जब भारत को आजादी मिल रही थी तो चर्चिल ने कहा था "आजाद भारत में सत्ता मूर्खों के हाथ में चली जाएगी." और आज ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है यह हम देख सकते हैं कि जो अतिरिक्त एफीडेविट का प्रावधान हुआ था उसके बावजूद भी आज संसद और विधानसभाओं में आपराधिक पृष्ठभूमि वालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है तो लगता है कि चर्चिल ने जो कहा था वह सही था और स्थिति यह आ गयी है कि जो कानून तोड़ने वाले लोग ही कानून बनाने का काम कर रहे हैं.

हमारा यह कहना है कि अगर ऐसे ही अपराधियों की संख्या संसद और विधान सभा में बढ़ती रही तो एक दिन ऐसा होगा कि वह बहुमत में आयेगा और एक दिन डॉन ही हमारे देश का प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री होगा और तब हमे एक नई डेमोक्रेसी की परिभाषा मिलेगी की गवर्नमेंट ऑफ द क्रिमिनल्स, बाई द क्रिमिनल्स, एंड फॉर द क्रिमिनल्स.

नवंबर 1976 में पाइनियर अखबार में अटल बिहारी वाजपेयी ने एक लेख लिखा था था कि जिसमे उन्होंने कहा कि "राजनीति के अपराधीकरण का सीधा असर विधायिका और कार्यपालिका की कार्रवाई पर पड़ेगा और इस पृष्ठ भूमि में जो प्रस्ताव आजादी कि 50वीं वर्षगांठ पर पारित हुआ था वह भी इन शब्दों के साथ शुरू हुआ था लेकिन पिछले 15 सालों से सभी दल इसके बारे में चुप्पी साध के बैठे हुए हैं.

हमारे हिसाब से राजनीति में जो अपराधीकरण बढ़ रहा है इसके तीन प्रमुख कारण हे उनमें पहला है रिप्रेजेंटेशन ऑफ पीपुल एक्ट 1951 की धारा 4 उपधारा 8 में यह व्यवस्था है कि अगर किसी पर हत्या का आरोप है और उसने कहीं अपील कर रखी है तो उसकी संसद या राज्यसभा की सदस्यता समाप्त नहीं होगी यानि कि वह हत्या का दोषी पाए जाने के बाद भी वो लॉ मेकर बने रहेगा.

इसी तरह एक्ट की धारा 62(5) में यह प्रावधान है कि कैदी वोट नहीं डाल सकते पर चुनाव लड़ सकते है , जिसकी वजह से माफिया लोग जेल में बैठे रहकर भी चुनाव लड़ते है और जीत कर माननीय सदस्य बन जाते है. तीसरा कारण यह है जिसकी वजह से इन बाहुबलियों की जरूरत पड़ती है -कि अगर आप टोटल वोटर्स के 10 प्रतिशत या 15 प्रतिशत का इन्तेजाम कर लो चाहे जैसे बाहुबल, धनबल या जाति-धर्म के नाम पर तो आप सदस्य बन सकते हैं. तो इसमें हो सकता है कि आपके चुनाव क्षेत्र के 80 से 85 प्रतिशत वोटर आपको बिल्कुल नहीं जानते होंगे तब भी आप संसद या विधान सभा में पहुच जायेंगे.

अब इन तीनों बातों को कैसे कम किया जाये क्योंकि पिछले 15 सालों से किसी भी सदन में या कार्यपालिका में इस पर चर्चा नहीं हुई कि राजनीति में इस अपराधीकरण को कैसे रोका जाए और मुझे यह अफ़सोस है कि चुनाव आयोग तथा उच्चतम न्यायालय के सकारात्मक सहयोग के अभाव में हमारी संस्था को सफलता नहीं मिली.

जहां तक सेक्शन 8-4 का सवाल है तो 2005 तक तो यह व्यवस्था थी कि अगर कोई सजायाफ्ता है तो भी वो चुनाव लड़ सकता है लेकिन 2005 में सुप्रीम कोर्ट ने कह दिया कि नहीं अगर उसका दोष सिद्ध है चुनाव नहीं लड़ सकता है. तो जब यह व्यवस्था आ गयी तो हमारी संस्था ने जनहित याचिका दायर की कि जब आपने

मान लिया है कि ऐसे लोगों को चुनाव नहीं लड़ने दिया जाए तो जो ऐसे लोग है उनकी सदस्यता को असंवैधानिक घोषित कर दीजिए. इसमें हमारे सुझाव को प्रथम दृष्टया सही मानते हुए सुप्रीम कोर्ट ने नोटिस जारी किया और इलेक्शन कमिशन को लिखा तो चुनाव आयोग ने काउंटर एफिडेविट के बजाय रजिस्ट्रार से कहा कि हमारी इसमें कोई भूमिका नहीं है.

आज जो चुनाव आयोग की अपराधीकरण को रोकने के लिए जो चिंता है उनका यह जवाब मेल नहीं खाता है और मुझे विश्वास है कि अभी हमारी अंतिम सुनवाई होने वाली है और मेरा यह कहना है कि आयोग कम से कम उच्चतम न्यायालय को अपना काउंटर एफिडेविट दे और जो भी उनका मत है चाहे वो सोचे कि इन लोगों के सदस्यता सही है या हमारे मत का समर्थन करते हुए एफिडेविट दें तो कम से कम जो दोषी हैं वो ऐसे पदों पर नहीं बैठ पायेंगे.

रिप्रेजेंटेशन ऑफ पीपुल एक्ट की धारा 62(5) में यह प्रावधान है कि कैदी वोट नहीं डाल सकते पर चुनाव लड़ सकते है. इसके बावजूद भी वहीं डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने अनुच्छेद 84 के सन्दर्भ में एक डिबेट में कहा था कि प्रतिनिधि बनाने के लिए उसका वोटर होना जरूरी है तो जब उनका यह मानना था कि प्रत्याशी होने के लिए वोटर होना जरूरी है तो यह कैसे हो सकता है कि जिसे वोट डालने का अधिकार न हो पर चुनाव लड़ने का अधिकार मिले. इस पर विचार करने की जरूरत है.

इतना ही नहीं दो फैसलों में सुप्रीम कोर्ट ने भी ये माना है कि जो लोग कैद में है उन्हें वोट डालने या चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं है. एक महेश कुमार शास्त्री के केस में 1983 और 1997 में सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि जब कैद

के दौरान कैदी बाहर जा कर वोट देने का अधिकार नहीं रखता है तो नामांकन के लिए बाहर आने की अनुमति कैसे मिल सकती है ये सोचने वाली बात है.

इस ही आधार पर हम लोगों ने, हमारी संस्था ने 2007 में चुनाव आयोग से अपील कि थी कि जो लोग कैद में है उनका नाम वोटर लिस्ट से हटा दिया जाये. इसके पीछे हमारा तर्क था कि ये तो अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है जिसमें दो असमान लोगों को समान अधिकार दिए जा रहे है क्योंकि जो जेल में है उनको वोट देने का अधिकार नहीं हे तो आम लोगों कि तरह उनका नाम भी वोटर लिस्ट में क्यों है और इसी का फायदा उठा कर वह जेल से चुनाव लड़ रहा है.

इसी बात को रखते हुए हमारी संस्था ने सुप्रीम कोर्ट में रिट दायर किया था जिसे उस समय नहीं माना गया, इसके जवाब में हमने पुनर्विचार याचिका डाली थी उसमें भी हमारे तर्कों को नजरअंदाज करते हुए एक वाक्य में खारिज कर दिया और हमे बताया भी नहीं गया कि जो तर्क दिए वह क्यों नहीं माने गए.

इसके बाद हमने सुप्रीम कोर्ट को लिखा कि हमारी याचिका खारिज तो कर दी पर हमारे प्रत्यावेदन पर आयोग को लिखें कि वह इस पर अपना निर्णय दे पर उस पर कोई निर्णय नही हुआ. हमारी संस्था ने इन दोनों बिंदुओं पर मुख्य चुनाव आयुक्त को लिखा पर उस कोई अहम जवाब अभी तक नहीं आया है.

हम अब बात करते है अपने तीसरे बिंदु की. जहां 10 या 15 प्रतिशत वोट पाकर भी कोई चुना जा सकता है इस प्रावधान को हमने चुनौती दी. जो लोग एक क्षेत्र में चुने जा रहे हैं 80 प्रतिशत लोग तो उन्हें वोट ही नहीं देते हैं. इस पर बाद में सुझाव

आया कि कम से कम 50 प्रतिशत और एक अधिक वोट हो. 1992 में सुभाष कश्यप और कई अन्य लोगों ने इसे सही माना और इसका समर्थन किया.

दिनेश गोस्वामी कमेटी बनी थी 1990 में जिसमें यह संस्तुति की थी कि चुनाव आयोग और भारत सरकार एक एक्सपर्ट कमेटी बनाये जो इस सिस्टम में बदलाव के बारे में देखें लेकिन इस बात को 22 साल हो गए लेकिन न तो चुनाव आयोग और न ही भारत सरकार के पास फुर्सत है कि ऐसी कोई कमेटी बनाई जाये और उसकी राय ली जाये. मुझे लगता है कि इस से पता चलता है कि ये जो हमारे कर्णधार हैं वो कितने गंभीर हैं. इसका कारण यह है कि सब इसी सिस्टम से चुन कर आते है तो वो कोई बदलाव नहीं चाहते है. इसमें पर मुख्य न्यायधीश ने इस रिट को रिजेक्ट करने के साथ कहा था कि इस पर डिबेट कर के कुछ किया जा सकता है पर बहस न्यायपालिका के अलावा कहीं और हो.

अगर कोर्ट नहीं करेगा और विधायिका नहीं करेगी तो कौन करेगा. यह तीन मुख्य बिंदु हमारी संस्था के हिसाब से अहम हैं अगर हमें राजनीति में अपराधीकरण को कम करना है तो इन बिन्दुओ को काबू में करना होगा.

प्रश्न: आपकी संस्था के हिसाब से जो भी क्रिमिनल है या किसी भी जेल गए है उन्हें चुनाव लड़ने का कोई अधिकार नहीं मिलना चाहिए तो क्या ऐसे लोगों कोई चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं है जो किसी वजह से अपराध में आये और बाद में आत्म समर्पण करके फिर से मुख्य धारा में आना चाहते है अैर समाज के लिए कुछ करना चाहते है जैसे की फूलन देवी, बल्कि उन लोगों के लिए होने चाहिए जो अपने स्वार्थ या फायदे के लिए क्राइम करते है।

जवाबः जो कैदी है उनका नाम वोटर लिस्ट का केस अभी सुप्रीम कोर्ट में पेंडिंग हे जहां तक इस प्रश्न की बात है तो हम कोई ब्लंकेट पैन की बात नहीं कर रहे है. क्रिमिनल पर हमारी संस्था के 200 सुझाव है पहली ये कि अगर अपराध साबित हो जाये और दो साल से ज्यादा की सजा मिली हो तो उनकी सदस्यता समाप्त की जाये. दूसरी बात ये है कि जब भी वोटर लिस्ट बने तो उन लोगों के नाम हटा दिए जाय तो जेल में है क्योंकि जब उनको वोट देने का अधिकार नहीं है तो उससे बड़ा अधिकार चुनाव लडने का क्यों है क्योंकि किसी भी देश में ऐसी व्यवस्था नहीं है कि जो वोट नहीं दे सकता वो चुनाव लड़े.

मधु किश्वर

जहां तक प्रजातंत्र के स्वास्थ्य का सवाल है बहुत सारी खामियां है, बहुत बीमारियाँ है, लेकिन मेरे ख्याल से इतनी भी बड़ी निराशा की बात नहीं लगती है जितने मेरे से पहले आये वक्ता ने व्यक्त की. उसका मुख्य कारण मुझे यह लगता है कि भारत देश में कम से कम इतनी ज्यादा बेचैनी है लोगों में इस व्यवस्था को बदलने के लिए कि अब चारों तरफ से प्रयास हो रहे हैं. छोटे -मोटे एनजीओ से लेकर, प्रोफेसरों से लेकर, कॉर्पोरेट सेक्टर से लेकर, गाँव-गाँव में पंचायत को कैसे चलाना है ऐसी काई बातों को लेकर मुझे एक बेचैनी दिखती है. मुझे तो विश्वास है कि बहुत कुछ निकलेगा.

मुझे लगता है कि इस व्यवस्था के पीछे कारण यह है कि जो 200 साल पहले हमारे साथ हुआ है, आजादी के बाद भी उसको बदलने के बदले बढ़ाया गया है. जिस चीज को बिगड़ने में 200 साल लगे तो उसे बदलने में थोड़ा टाइम लगेगा. मुझे लगता है कि राजनेताओं को गाली देना और उनकी आलोचना करना बहुत आसान काम है. जिसका मतलब यह कतई नहीं कि वो गालियाँ डिजर्व नहीं करते. हम उनकी जितनी आलोचना करते हैं उसमे बहुत कुछ वो डिजर्व भी करते हैं परन्तु मुझे इस बात से

काफी चिंता होती है कि जब मैं यह देखती हूँ कि हम ज्यादातर राजनेताओं को गाली देकर जो पूरी भ्रष्ट व्यवस्था के बाकी हिस्से हैं जो नींव के लोग हैं . उनपर ध्यान नहीं देते.

प्रजातंत्र में नेक राजनेता उन ही मुल्क में पैदा हो रहे हैं ..आप कहिए ऐसे राजनेता जिन पर समाज भरोसा कर सके. वो ऐसे देशों में अधिक मात्रा में दिख रहे हैं जहां पर व्यवस्था और प्रशासन, व्यवस्थात्मक ढंग से चलने की क्षमता रखता है. जहां न्यायपालिका ठीक से काम करती है. जहां पुलिस जवाबदेह है और उसमें पारदर्शिता भी है. पर हमारे भारत जैसे देश जहां यूरोप ने अपनी कॉलोनियां स्थापित कीं, जो उपनिवेशवाद के शिकार हुए, वहाँ डेमोक्रेसी ठीक से काम क्यों नहीं कर पा रही क्योकि हमने उसके जाने के बाद चुनावी ढांचा तो तैयार कर लिया पर, प्रशासनिक ढाँचे में बदलाव नहीं किया.

1861 का पुलिस एक्ट आज भी काम कर रहा है. हल्का सा भी बदलाव करने की क्षमता हमारी डेमोक्रेसी में नहीं है. जब भी सुधारों की बात होती है या कई आयोग बिठाए जाते हैं चाहे वो पुलिस कमीशन हो या हाल ही का सोली सोराबजी कमीशन तो वो देखते हैं कि इंग्लैण्ड की व्यवस्था कैसी है ? आयरलैंड की कैसी है? और इधर उधर से कट-पेस्ट कर क़ानून बनाते हैं और सौंप देते हैं.

इस बारे में नहीं सोचते कि यहाँ हमारे देश कि जरूरतें क्या हैं. यहाँ का समाज कितना डाइवर्स है यहाँ का प्रशासनिक ढांचा कैसा हो. जब तक प्रशासनिक ढाँचे में ईमानदारी और नागरिकों के प्रति जवाबदेही नहीं होगी तो आप चाहे जितने भी चुनावी सुधार कर लीजिए आपको गुंडा राजनेता, भ्रष्ट राजनेता मिलेंगे ही मिलेंगे.

बहुत से लोगों का यह मानना है कि अगर राजनीति में भी मेरिट के आधार पर लोग आ जाएँ ऐसे लोग जो अच्छा पढ़े लिखे हों, अच्छी अंग्रेजी बोलना जानते हों तो राजनीति सुधर सकती है खासतौर पर तथाकथित संभ्रांत इलाकों में रहने वाले लोगों का तो यह विश्वास ही है.

लेकिन मेरा सवाल यह है कि प्रशासन तो मेरिट आधारित है. आईएएस तो मेरिट के आधार पर आते हैं परीक्षा देकर आते हैं सारे अधिकारी ऐसे ही आते हैं. यह तो सारे वेल-एजुकेटेड लोग है फिर वो पद पाकर इंसान से हैवान क्यों बन जाते है?

आज कौन सा अधिकारी है जो गृह मंत्री को बिना घूस दिए दिल्ली का पुलिस आयुक्त बन सके. खास तौर पर ऐसे इलाके जहां अधिक क्राइम है वहाँ के थानेदारों तक की तैनाती ऐसे ही होती है. सवाल मेरिट का भी नहीं है.

मेरा यह मानना है कि सरकारी दफ्तरों के बाहर और समाज में ईमानदार लोगों की कमी नहीं है पर सरकारी ऑफिस में , प्रशासनिक अधिकारी के आस पास के लोग, कचहरी में और थाने में जितने गुंडे बदमाश और भ्रष्ट लोग मिलते है उतने कहीं और नहीं मिलेंगे. यहाँ तक कि अंडर वर्ल्ड में भी इतने गुंडे बदमाश लोग नहीं मिलेंगे.

जो ढांचा अंग्रेजी शासन छोड़ कर गया जो प्रशासनिक ढांचा उनका था उसको हमने रत्ती भर भी नहीं बदला.

यह भी आप समझेंगे कि एक नेता, एक मंत्री तब ही भ्रष्ट हो सकता है जब उसको अफसरशाही समर्थन दे क्योंकि कागजी कार्यवाही तो अफसरों के हाथ में है. परन्तु एक नेक नेता को भी बिठा दीजिए तो वह किसी को नहीं रोक पायेगा क्योकि उसके नीचे पूरी एक फ़ौज बैठी है इसलिए वह कुछ बदल नही पायेगा. वह यह भी जानते है कि भ्रष्ट अधिकारी को कड़ी से कड़ी सजा क्या मिलेगी? तबादला . यानी अभी तुमने

यहाँ लूट लिया अब कहीं और जाकर भी लूटो. इस से ज्यादा कुछ नहीं. ज्यादा से ज्यादा दो तीन महीनों के लिए निलंबित हो जाएगा. इसके बाद और भी अच्छी कुर्सी मिल जायेगी. तनख्वाह मिलती रहेगी.

आप एक नेता को कम से कम पांच साल बाद तो निकाल सकते हैं. लेकिन आप अफसर की जी हुजूरी के अलावा कुछ नहीं कर सकते. कितने लोगों में हिम्मत है कि वह जाकर पुलिस आयुक्त के दफ्तर में उसे गाली सुना सके. या उसे वो बोल सके जिसके वह लायक है. इसलिए पहले प्रशासनिक सुधार, न्यायिक सुधार, और पुलिस सुधार कि बात हो इसका यह मतलब नहीं है कि चुनाव सुधार को कम अहमियत मिलनी चाहिए.

पर सच यह है कि चुनाव सुधार के लिए कई बदलाव आये हैं जिसमें कानूनी भी हैं पर प्रशासनिक सुधार के नाम पर आरटीआई को छोड़कर और कोई बदलाव नहीं आया है. यूपीए सरकार ने 2004 में वायदा किया था कि वो प्रशासनिक सुधार, न्यायिक सुधार वगैरह लायेंगे पर उन्होंने यह बिल्कुल ठन्डे बस्ते में डाल दिए.

इनकी जगह 'करप्शन फ्रेंडली' नरेगा और अनाज वितरण जैसी योजनाओं को लागू किया पर प्रशासनिक सुधार ठन्डे बस्ते में हैं. प्रशासनिक सुधार प्राथमिकता होनी चाहिए.

वह समाज जहां निर्भीक और स्वतंत्र चुनाव न भी हो तो कम से कम आम लोगों को जिन चीजों की जरूरत है वह तो मिले जैसे साफ सड़क, अच्छा पानी, आम नागरिक सुविधाएं तो बिना लड़ाई के मिले. इसलिए अगर कम से कम हमारा प्रशासन

जवाबदेह हो तो वह चीज़ें जो बुनियादी रूप से आवश्यक हैं. चाहे वह कूड़ा उठवाना हो, चाहे नाली साफ़ करना हो, उनके लिए तो हमे तिल तिल न मरना पड़े.

दूसरी बात मै यह कहना चाहती हूं कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक स्वतंत्रता भी बहुत जरूरी है बड़े कारपोरेट सेक्टर सिर्फ 3 प्रतिशत लोगों को रोजगार देती है बाकि ९३ प्रतिशत लोग अनऑर्गेनाइज्ड सेक्टर में अपनी रोजी रोटी का इंतजाम खुद से करते है छोटे-मोटे धंधे करने वाला, रेहड़ी लगाने वाला, साइकिल रिक्शा चलाने वाले ये सब लोग आज नौकरशाहों के रहमों करम पर है उन्हें पैसे भी देते है गाली और मार खाने के साथ-साथ रोजगार छीन जाने का भी डर लगा रहता है क्या इसके लिए कोई प्रावधान करने की जरूरत नहीं है कि ये लोग भी रोजगार का अधिकार पा सके, अगर नौकरशाह और पुलिस, नेताओं के इशारे पर काम करना बंद करके अपना काम अच्छे से करे तो बहुत सारी समस्याएं सुलझ सकती है, इसलिए चुनाव प्रक्रिया सुधार के साथ साथ प्रशासनिक, पुलिस, और न्यायपालिका में भी सुधार की उतनी ही जरूरत है.

प्रश्न: मधु जी आपकी बातें सुनकर थोड़ी सी निराशा होती है कि अगर हम समाज के लिए कुछ करना चाहें तो कुछ नहीं कर पायेंगे.

उत्तर: आपको निराश होने की जरूरत नहीं है. इतना याद रखिये कि अगर समाज को कुछ देना है तो पहला आपका पेट भरा हो. आपकी आँखें भरी हो. फिर आपका दिल भरा हो तभी जाकर आप समाज के लिए कुछ करिए. जिसमें आपको अपनी जेब से भी कुछ देना हो तो आपको एक सुख का अहसास हो. आजकल समाज के लिए कुछ करने के नाम पर पैसा कमाना आम बात हो गयी है जो बहुत दुखद है.

<u>प्रोफेसर जगदीप चोकर</u>

मै मधु जी की बात से ही शुरू करना चाहता हुँ कि पुलिस सुधार के सम्बन्ध में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय आये दस से ज्यादा साल हो गए प्रकाश सिंह के मामले में. वह किसी भी राज्य में नहीं लागू हुआ. दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग के गठन की बात वीरप्पा मोयली ने की थी.लेकिन कुछ नही हुआ. न्यायिक सुधार चल रहा है लेकिन मेरा मानना यह है कि "न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी" क्योंकि ये सारे सुधार तो नेताओं को ही करने है. मधु ने जो राजनेताओं के लिए डिफेंस प्रस्तुत की वह तो पंकज जी से भी बढिया थीं. पहले नेताओं को बेचारा कहा फिर कहा बेचारा नहीं कहना चाहिए. नेताओं के बारे में यह सबसे अच्छी बात है कि जनता अपराधी को वोट देती है. जनता नेताओं से पैसे मांगती है. न्यायपालिका अपना काम नहीं करती. बेईमान है वह सुस्त है सालों-साल में फैसले करती है.

इस सम्बन्ध में कुछ बातें कहना चाहता हूँ. हम कहते है कि हम एक जनप्रतिनिधि को चुनते है तो इससे पहले कि हम और आप अपना वोट डाले. हम चुनें इससे पहले राजनीतिक दल यह तय करती है कि किसको टिकट मिलेगा. जिनको हम अपना वोट देकर चुनते है उसका निर्धारण राजनीतिक पार्टियां करती है कि यह 6 लोग खड़े होंगे चुनाव में.

मान लीजिए मैंने करोड़ों खर्च करके टिकट ले लिया और विधानसभा में भी पहुंच गया तो वहाँ अगर कोई बिल आया तो उसके पक्ष में वोट देना है या विरोध करना है. यह कौन तय करता हैं उसके लिए भी राजनीतिक पार्टियों के व्हिप जारी होते हैं. उसके लिए भी राजनीतिक पार्टियां ही फैसला करती है. तो न तो वोटर स्वतंत्र है और न ही वह तथाकथित जनप्रतिनिधि.

सभी राजनीतिक पार्टियां खुद को लोकतंत्र का स्तम्भ कहती है अच्छी बात है पर क्या उनके लिए लोकतंत्र नहीं है ?

मै पूछता हूँ कि क्या उनमें आन्तरिक लोकतंत्र है ? और जो खर्चे की बात हो रही है. यह क्यों बढ़ता जा रहा है. आप देख लीजिए कि हैदराबाद के एक सज्जन को कोई पार्टी मुरादाबाद ले आई. मतलब वहाँ एयर ड्रॉप कर दिया. अब वह इलेक्शन लड़ने आया है. अखबार में तो फोटो छपते हैं उसके. लेकिन स्थानीय कार्यकर्ता को रास नहीं आता जो सालों से वहाँ मेहनत कर रहा है.

आंतरिक लोकतंत्र का मतलब यह नहीं है कि सिर्फ प्रधान का इलेक्शन होगा. पार्टी के प्रत्याशियों का भी इलेक्शन होगा. पार्टी की जितने सदस्य हैं वह तय करें कि हमारा प्रत्याशी कौन होगा.

अभी महानगरपालिका के चुनाव हुए. मेरे यहाँ जो पार्षद था उसकी बीवी को टिकट मिल गया तो सामंतवाद नीचे से ऊपर की ओर जा रहा है.

सुभाष कश्यप जी कह रहे थे कि राजनैतिक दलों के लिए भी कानून होना चाहिए. सुप्रीम कोर्ट ने कम से कम 10 निर्णयों में लिखा है. विधि आयोग ने 1999 की रिपोर्ट में लिखा है. सुभाष कश्यप जी जिस कमीशन में थे उसमें लिखा है. वीरप्पा मोयली के प्राशासनिक सुधार आयोग में भी इसका जिक्र है. इन्द्रजीत गुप्ता समिति ने भी यह लिखा है. मनमोहन सिंह जी भी उसमें सदस्य रहे. अटल बिहारी वाजपेयी जी भी थे उसमें. लेकिन कोई पार्टी किसी हद तक आंतरिक लोकतंत्र को लागू करने के लिए तैयार नहीं है. जर्मनी में जो हिटलर का राज आया वह भी इलेक्शन के जरिये

आया. उसके बाद जर्मनी को होश आया कि यह राजनीतिक दल बिना किसी लगाम के नहीं रह सकते. तब वहाँ इनके लिए आंतिरक लोकतंत्र का कानून बनाया. उस ही आधार पर चुनाव आयोग ने भी भारत के लिए कानून बनाया पर उसकी रिपोर्ट मई 1999 से विधि मंत्रलय में रखी है.

राजनीतिक पार्टियों में आन्तरिक लोकतंत्र बहुत आवश्यक है जिसके लिए हम सबको संघर्ष करना होगा निरंतर वर्षों तकं १० सालों तक ५० सालो तक. राजनीतिक पार्टियों की वित्तीय पारदर्शिता जो की स्पष्ट नहीं है. हमने यह आरटीआई आवेदन किया कि सभी दल अपने इनकम टैक्स रिटर्न की रसीद इलेकशन कमीशन को देनी होगी. उसके लिए ढाई साल तक झगडा रहा. सब के पास रिजेक्ट हुई. फिर अपील की. सीआईसी में पहुंचे. वहाँ पॉलिटिकल पार्टियां 10 वकीलों को लेकर आयीं. एक दल के दो वरिष्ठ वकील उस सुनवाई के लिए आये. उन्होंने जो तर्क दिए वह फैसले में दिए है कि रिटर्न की कॉपी देने से दलों के व्यापारिक हितों को नुक्सान होगा. मैंने कहा मुझे लगता था कि दलों की राजनीतिक प्रतिस्पर्धा होती है.

हर कदम पर जहां पैसे का सवाल हो राजनेता खुले मंच से कहते हैं कि कोई उन्हें चेक के जरिये पासे देने को तैयार नहीं है. किसी ने उनसे पूछा कि आप बिना चेक के लेते क्यों हो अकाउंट में क्यों नहीं लेते ?

यहाँ दिल्ली में दो तीन साल पहले एक राजनीतिक दल के दफ्तर से करोड़ों रूपये चोरी हो गया था. उन्होंने उसकी एफआईआर तक नहीं कराई.

कहा गया है कि राजनीतिक दल अपने डोनेशन क ब्यौरा चुनाव आयोग को दें. लेकिन वहाँ दो-तीन दलों को छोड़कर किसी दल ने दिया ही नहीं है यह ब्यौरा. सुप्रीम कोर्ट में भी गया यह मामला पर बात आगे बढ़ी नहीं.

इसलिए वित्तीय पारदर्शिता की सबसे ज्यादा जरूरत है कि कितना पैसा आता है. कहाँ से आता है. कहाँ खर्च होता है. सिर्फ चुनाव के समय पर नहीं, हर वक्त.

मेरे ख्याल में बाकी सब चीजें जरूरी हैं पर आंतरिक लोकतंत्र और वित्तीय पारदर्शिता मुख्य मुद्दे हैं अगर यह ठीक हो जाए तो काफी हद तक काफी कुछ ठीक होने कि उम्मीद है. जब तक जड़ से कोई चीज ठीक नहीं होगी तब तक कुछ नहीं होगा.

धन्यवाद ज्ञापन- प्रवीण कुमार, पीएफएन